ओ३म्

योग विज्ञान

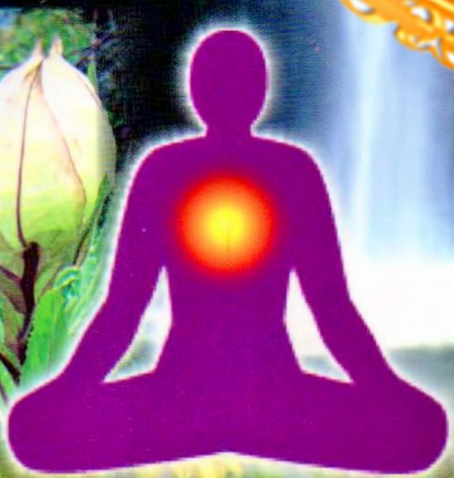

योग विज्ञान

योग साधना एवं योग से सम्बन्धित कतिपय महत्वपूर्ण आध्यात्मिक विषयों का प्रेरणात्मक परिचय

-: लेखक :-
आचार्य अरूण कुमार

ओ३म्

प्रकाशक	:	ऋषि कल्प आश्रम (गुरूकुल), अमर भारती, चन्द्रबनी, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248002
दूरभाष	:	9412053841, 9012486055
ई–मेल	:	acharyarishikalp@gmail.com
प्रकाशन प्रभारी	:	☛ श्री सोनू कुमार जी ☛ श्री कुलदीप वर्मा जी
संस्करण	:	
प्रतियाँ	:	
मूल्य	:	
मुद्रक	:	

प्रकाशकीय

संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के सुखों को प्राप्त करना चाहता है। प्रथम सुख है, निरोगी काया। अगर व्यक्ति निरोगी है तो वह अपने जीवन में कठिन परिश्रम करके अन्य सभी सुखों को भी प्राप्त कर सकता है। सर्वप्रथम निरोगी काया का होना अति आवश्यक है। आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रस्त एवं पीडित है जैसे हृदयरोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, दमा, गठिया, सरवाईकल, कमरदर्द, घुटने दर्द, गैस, कब्ज आदि।

सभी रोगों के निवारण के लिए योग विज्ञान के विषय में जानना नितान्त आवश्यक है। इस पुस्तक में मुख्य–मुख्य योगासन तथा प्राणायाम का अभ्यास करने के बारे में ज्ञान कराया गया है। आप नित्य प्रति खुली वायु में खाली पेट इन योग क्रियाओं का अभ्यास करके अपनी काया को निरोगी बना सकते है तथा अपने जीवन को सुखमय बना सकते है ।

वर्तमान में योग साधक द्वारा संसार के कोने कोने मे अपने योग शिविर लगाकर लोगों को योग विज्ञान का ज्ञान कराने में प्रयत्नशील है ताकि सभी प्राणी अपने जीवन को आनन्द, सुख, प्रसन्नता तथा शांति से व्यतीत कर सकें ।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर हमने योग विज्ञान नामक पुस्तक को संसार के उपकार के लिये प्रकाशित करवानें का प्रयत्न किया है। आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि समाज के हर वर्ग, आयु के व्यक्ति इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे ।

योगशिविरों के साधकों की लगातार मांग की पूर्ति हेतु परमश्रद्धेय आचार्य अरूण जी महाराज ने महती कृपा कर अपने अनुभूत प्रयोगों को लोग हितार्थ प्रकट किया है। आशा है योगाभ्यासीगण इस पुस्तक में वर्णित ज्ञान एवं प्रक्रियाओं का अनुसरण एवं नियमित अभ्यास कर अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करके आनन्द से भरपूर सुखदायी, शान्तिप्रद व प्रसन्नतापूर्ण जीवन जी सकेगें ।

अशोक कुमार सिंह
बाबा प्रसिद्ध नारायण महाविद्यालय, बगथरी,
मुरारा, जौनपुर, (उत्तर प्रदेश)

समर्पणम्

ईश्वर ने मनुष्य के शरीर की रचना इतनी सुन्दर की जिसका वर्णन करना भी कठिन है परन्तु मनुष्य ने अपनी व्यस्त दिनचर्या के कारण एवं खानपान को अव्यस्थित करने के कारण अपने सुन्दर शरीर में भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न कर लिये ईश्वर द्वारा उपहार स्वरूप दिया गया यह सुन्दर शरीर प्रकृति से अलग हटता चला गया और रोगग्रस्त हो गया ।

इतिहास साक्षी है कि हमारे देश में किसी भी प्रकार की कठिन से कठिन समस्या पैदा हुई हो उसके समाधान के लिए हमारे देश के ऋषि मुनियों ने समय समय पर मार्गदर्शन किया और कठिन से कठिन समस्या का समाधान खोज निकाला ठीक उसी प्रकार इस रोगग्रस्त शरीर की कठिन समस्या के निवारण के लिए पूज्य आचार्य श्री अरूण कुमार जी ने अपने जीवन की सम्पूर्ण आकांक्षाओं (ईच्छाओं) को त्यागकर समाज के उद्धार के लिए तथा नहीं पीढ़ी का मार्गदर्शन करने के लिए ऋषिकल्प आश्रम गुरुकुल, चन्द्रबनी, देहरादून की नींव रखी । श्रद्धेय आचार्य जी ने इस प्रांगण से समय समय पर देश भर में योग के शिविरों का आयोजन कर एवं इस योग विज्ञान पुस्तक के द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए एवं भारतीय संस्कृति के उद्धार के लिए जो कांटो भरा मार्ग चुना है ईश्वर उनके इस मार्ग को सरल बनायें ऐसी, मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

वह जीवन भी क्या जीवन है,

जिसने दु:ख न झेला हो ।

वीर वहीं कहलाया जग में,

जो कष्टों में खेला हो ।

मुझे आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि सम्पूर्ण देशवासी इन शिविरों के माध्यम से एवं योग विज्ञान पुस्तक के माध्यम से अपनी दैनिक कियाओं को व्यवस्थित कर शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्ण जीवन जी सकेंगें ।

विरेन्द्र बहादुर सिंह
ओ.पी.एम., अमलाई, शहडोल,
(मध्य प्रदेश)

समर्पणम्

सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को सर्वथा निरोगी और सदाचारी बनाया है। परन्तु आज के समय में मनुष्य स्वस्थ नहीं दिखायी देता है। पृथ्वी पर सर्वत्र रोग और शोक का साम्राज्य है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य को रोग और दुख घेरे रहते है। आज एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जो चिन्ता, कष्ट, शोक, संताप, उदासी से घिरा हुआ ना हो।

प्रकृति की सीख पर ध्यान न देने का परिणाम ही है कि आज मनुष्य हजारों किस्म के रोगों का शिकार हो गया है। यह महान हर्ष का विषय है कि समस्त मनुष्य मात्र के लिए दुखत्रय को दूर कर सुख शान्ति का अनुपम संदेश पहुँचाने के लिए जिस प्रकार मुनिवर पतंजलि के चित को शांत एवं निर्मल करने के लिए योगदर्शन का, शारीरिक सौन्दर्य के लिए चरक संहिता का तथा वाचिक पावनता के लिए महाभाष्य का निर्माण कर जगत का कल्याण किया है। ठीक उसी प्रकार योग विज्ञान पुस्तक का लेख व प्रकाशन किये है। अपने शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति की तपस्थली ऋषिकल्प आश्रम गुरुकुल चन्द्रबनी, देहरादून के पावन प्रांगण में व विभिन्न स्थलों में योग शिविरों के माध्यम से हजारों व्यक्तियों को अनेकों रोगों से मुक्ति दिलाकर स्वास्थ्य प्रदान किया है। प्राकश्यमान प्रस्तुति के माध्यम से लाखों व्यक्तियों को योग की दिशा में प्रेरित करेंगे। इस प्रकार लोगों को अपने स्वास्थ्य पर जो सर्वाधिक मुल्यावान भौतिक सम्पत्ति है पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है किसी कवि का कहना है कि शरीर 'माद्य खलु धर्म साधनम् अर्थात् धर्म' का आचरण तभी हो सकता है जब शरीर स्वस्थ रहेगा ।

योग शिविरों के साधकों की लगातार मांग की पूर्ति हेतु आचार्य अरूण जी महाराज ने महती कृपा कर अपने अनुभूत प्रयोगों को लोग हितार्थ प्रकट किया है। आशा है कि योगाभ्यासीगण इस पुस्तक में वर्णित ज्ञान एवं प्रक्रियाओं का अनुसरण एवं नियमित अभ्यास कर अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करेंगें तथा आनन्द से भरपूर सुखदायी शान्तिप्रद व प्रसन्नता पूर्ण जीवन जी सकेंगे।

अशोक कुमार विन्दलस
एम0 डी0 विन्दलस बायोटेक
देहरादून, उत्तराखण्ड

आत्मनिवेदन

योग–प्राणायाम विद्या हमारे ऋषि मुनियों के द्वारा आयुर्वेद में बतायी गयी धरोहर है । भारत में ही नहीं पूरा विश्व आज के युग में योग विज्ञान की चिकित्सा से स्वस्थ एवं आर्थिक दृष्टि से मजबूत हो रहा है। आयुर्वेद के अध्ययन से मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक प्रसन्नता भी प्राप्त करने के योग्य बनता है ।योग विज्ञान तथा आध्यात्मिक शिक्षा ज्ञान से शरीर का यथार्थबोध हो जाता है तथा मनुष्य मन की शुद्धि की जानकारी जान लेता है।इसके आचरण करने से सुबुद्धि ज्ञान स्वास्थ्य भी प्राप्त कर लेता है।

ऋषियों की तपोभूमि आर्यावर्त में पैदा होने वाले हर बच्चे व बड़े व्यक्ति को योग की शिक्षा व दीक्षा अनिवार्य रूप में मिलनी चाहिए।इसी पवित्र लक्ष्य को मन में संकल्प कर साकार करने हेतु आचार्य श्री अरूण कुमार जी ने पूरे देश में जन मानस के सहयोग से योग शिविरों का आयोजन कर रहे हैं। असाध्य से असाध्य रोगों की चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद विज्ञान से कर रहे है।पाठकगणों से अनुरोध है कि आप भी अपने क्षेत्र में योग शिविर का आयोजन कर पुण्य के भागी बनें। पूज्य आचार्य अरूण कुमार जी योग से चित्त व शरीर के दोषों का, वेद ज्ञान से अज्ञान का तथा अन्धविश्वास का, योग व आयुर्वेद की परम्परा से असाध्य रोंगों का उपचार कर ऊर्जावान, ज्ञानवान, सुसंस्कृत, सभ्य, देशप्रेमी, स्वस्थ समाज का अभिनव सृजन कर रहे है ।

उषा भट्ट
राज्य आन्दोलनकारी
उत्तराखण्ड

भूमिका

अष्टाङ्ग-योग

संसार भर के सभी मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त प्राणी सुखों को प्राप्त करना चाहते है और दुःखों से छूटना चाहते है । पर यह सम्भव नहीं हो पा रहा है। सुख के सुन्दर उद्यान दुःख से कंकडकीर्ण होते जा रहे है। प्राणीमात्र की प्रवृत्ति सुखी होने की है, इसीलिए इसका कोई विकल्प नही है। जब इच्छा सुख की है और प्रयास भी जारी है तथा सफलता नहीं मिल रही मतलब या तो हमारे साधन गलत है या लक्ष्य ही अनिर्णीत है। लक्ष्य तो स्पष्ट ही है कि हमें किसी भी हालत में दुःख नहीं चाहिए। इसीलिए वेदों, शास्त्रों तथा वैदिक परम्पराओं के अनुसार साधन में ही गलतियाँ है। कोई व्यक्ति यदि सुगन्ध को प्राप्त करना चाहता है और यात्रा करे कूड़े के ढेर की तरफ तो क्या सुगन्ध को कदाचित प्राप्त कर सकता है? यदि मनुष्य दक्षिण की तरफ जाना चाहता है और चले पूर्व की तरफ तो क्या अपने गन्तव्य तक पहुँच सकता है। जी हाँ कभी नहीं तो ठीक इसी प्रकार यदि मनुष्य सुख प्राप्त करने के लिए विश्वजननी मानव कल्याण के लिए जिस योग का उपदेश ऋषि महर्षियों ने दिया उसके स्थान पर भोग का आश्रय ले लो तो क्या सुख की प्राप्ति हो सकेगी नही। आज मनुष्य मात्र की प्रवृत्ति निरंतर भोगों को भोगने की बढ़ती ही जा रही है, फलतः दुःख, विषाद, निराशा, अशान्ति, भय, शोक, सन्त्रास, अविश्वास बढ़ते ही जा रहे है। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिये ऋषियों ने योग का मार्ग प्रशस्त किया था, जिससे मुँह मोड़ने के कारण ही मानव समाज की ये स्थिति बन रही है। सर्वत्र आतंकवाद का साया नजर आ रहा है, अशिक्षा के प्रसार के कारण ऊँच नीच का भेद भयंकर खाई का रूप ले रहा है। सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याभिचार, घूसखोरी, बलात्कार रूपी दैत्यों का साम्राज्य बढ़ रहा है। आज आतंकवाद का समाधान, भ्रष्टाचार, व्याभिचार भयंकर रोगों का समाधान न किसी सरकार, न किसी सम्प्रदाय, तंत्र, पंच, मजहब और न किसी संगठन के पास है इसका तो एक मात्र समाधान । अष्टांग – योग के पास है ।

योग की परिभाषा

विभिन्न प्रसंगों के अनुसार योग शब्द का प्रयोग अनेक अर्थो में होता है। आयुर्वेदार्दिक ग्रन्थों में इसका भिन्न अर्थ है तो ज्योतिषादि शास्त्रों में इसका भिन्न अर्थ है, परन्तु प्रसंग में योग का अर्थ महर्षि पतंज्जलि द्वारा प्रणीत योगदर्शन के अनुसार लिया गया है । महर्षि लिखते हैः

योगश्चितवृतिनिरोध : योग दर्शन ½

अर्थात चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है । उपर्युक्त शास्त्र में ही बताये गये योग के आठ अंगों को भी योग ही कहा गया है।

योग के अंग

योगदर्शन नामक शास्त्र के अनुसार योग के आठ अंग है, इसी कारण से इसे अष्टांग–योग (आठ अंगों वाला) भी कहते है ।

1) यम 2) नियम 3) आसन 4) प्राणायाम

5) प्रत्याहार 6) धारणा 7) ध्यान 8) समाधि

योग का प्रथम अंग – यम

परिभाषा–यमु उपरमे धातु से यम शब्द बनता है, जिसका अर्थ उपरम हो जाना अर्थात छूट जाना। यम वो साधन है जिसके द्वारा सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति मिलती हे, इसीलिए यम कहते है।

यम के पाँच भेद

1) अहिंसा 2) सत्य 3) अस्तेय 4) व्रह्मचर्य 5) अपरिग्रह

अहिंसा

परिभाषा :– मन, वचन व शरीर से सभी कालों सभी परिस्थितियों में हिंसा का त्याग अर्थात दुःख न देना ही अहिंसा है। प्रत्येक व्यक्ति को हिंसा और अहिंसा के गूढ़ अर्थ को अवश्य समझना चाहिए। सामान्य रूप से यही समझा जाता है कि किसी को कष्ट देना हिंसा और इसके विपरीत अहिंसा, किसी को पीड़ा पहुंचाना हिंसा और इसके विपरीत अंहिसा। यदि इसी सिद्वान्त को कुछ समय के लिए मान लिया भी लिया जाये तो ईश्वर सबसे ज्यादा हिंसक हो जायेगा, माता–पिता, गुरूजन, आचार्य आदि भी अत्यन्त हिंसक हो जायेंगे। क्योकि ईश्वर भक्तों को तो कर्मो का फल देकर कष्ट पहुँचाता है, माता–पिता, गुरूजन, आचार्य भी तो सुधार की दृष्टि से दण्ड देते हैं। परन्तु ईश्वर को तो वेदों सत्य शास्त्रों सर्वथा हिंसा शून्य बताया गया है, माता–पिता, गुरूजन आदि को सदा हितकारी ही बताया गया है।

अतः उपर्युक्त सिद्वान्त के आश्रय से ईश्वर आदि सभी हिंसक हो जायेगें। इसीलिए ये स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि केवल किसी को दुःख या सुख देने मात्र से ही कोई हिंसक या अहिसंक नहीं होता अपितु न्यायपूर्वक किसी को कितना ही कष्ट दिया जाय तो

वह अहिंसा ही है और अन्यायपूर्वक किसी को छोटा भी दु:ख दें या बड़ा दु:ख दें छोटा सुख दें या बड़ा सुख दें वह हिंसा ही है। हिंसा और अहिंसा अन्याय और न्याय पर खड़ी है। न्यायपूर्वक दण्डादि कष्ट देना भी अहिंसा है और अन्यायपूर्वक पुरस्कारादि सुख देना भी हिंसा है।

मध्यकाल में इसके स्वरूप को न जानने के कारण ही हमने अनेक कष्ट झेले और आज भी यदि नहीं समझेगें तो कष्ट उठाना ही पड़ेगा ।

अहिंसक व्यवहार के लाभ

1) अहिंसा का पालन करने से मनुष्य के हृदय से सभी प्राणियों के प्रति हिंसा का भाव समाप्त होकर प्रेम उत्पन्न हो जाता है।
2) अहिंसा का पालक ईश्वर का अत्यन्त प्रिय हो जाता है, क्योंकि ईश्वर भी सर्वथा हिंसा शून्य है।
3) मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करने की योग्यता पा लेता है।
4) अहिंसा का पालक व्यक्ति सभी प्रकार से सदैव निर्भय हो जाता है।
5) अनेक प्रकार के दु:खों से निवृत और सुखों से युक्त हो जाता है।

सत्य

परिभाषा :– जैसा पढ़ा, लिखा, सुना और अनुभव से प्राप्त ज्ञान हैं, उसको वैसा ही वाणी से प्रकट करना सत्य कहलाता है।

हम प्राय: जन्म से लेकर आज पर्यन्त सत्य के अपनाने और असत्य को छोड़ने के बारे में सदा सुनते रहते है। पर विडम्बना तो यह है कि हमारे जीवन में न तो सत्य आ पाता है, और ना ही असत्य छूट पाता है । इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि हमने अपना लक्ष्य मात्र भौतिक पदार्थो की प्राप्ति ही माना है, अन्त: यात्रा का कोई लक्ष्य नहीं है। इसीलिए भौतिक पदार्थो का पाने के लिए जो भी करना पड़े वो करते हैं, चाहे असत्य का आश्रय लेना पड़े या सत्य का। परन्तु इस असत्य के आश्रय से जो अध्यात्म में हानि होती है। इससे जो आत्मा मरती है, उसका कोई ध्यान नहीं। इसलिए व्यावहारिक स्तर पर असत्य का त्याग और सत्य का आश्रय संभव नहीं हो पा रहा है। इसीलिए जब तक आत्म तत्व को जीवन के सामने नहीं रखेगें तब तक व्यवहारिक स्तर पर असत्य का पूर्ण त्याग संभव नहीं है। यह योग आत्मा को समक्ष रखकर जीवन जीने की कला सिखाता है ।

सत्य का प्रयोग कहाँ, कैसे और कब करना चाहिए, इसकी जानकारी न होने के कारण ही सत्य को बदनाम किया जाता है। हमें सत्य का उचित समय के अनुसार प्रयोग करना आना चाहिए। ऐसा सत्य कभी भी नहीं बोलना चाहिए जो अप्रिय हो किसी को कष्ट पहुँचाने वाला हो या जिससे भीषण हानि होने की संभावना हो, ऐसी परिस्थिति में तो मौन ही रहना अच्छा है।

बच्चों के साथ भी असत्य का व्यवहार नहीं करना चाहिए, परन्तु ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि झूठ भी न बने और व्यवहार भी सिद्ध हो जाये। सत्याचरण बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। फलतः कठिन से कठिन विषय को भी जल्दी ही ग्रहण करने की क्षमता पैदा हो जाती है ।

हमें इस सत्य का प्रयोग अपने घर से ही आरम्भ कर देना चाहिए, माता–पिता, पति – पत्नी, बच्चों, परिवार से ही शुरूआत कर देनी चाहिए, तभी इसका सार्वभौम स्वरूप हमारे समक्ष स्पष्ट हो पायेगा और तभी सत्यमेव जयते का उद्घोष सार्थक हो पायेगा ।

सत्य के पालन से लाभ

1) सत्य का पालन करने वाले के प्रति मनुष्य मात्र का विश्वास दृढ़ होता है।

2) व्यय, धन व बुद्धिमानों से प्रशंसा की प्राप्ति होती है।

3) जीवन में निर्भीकता आती है।

4) सत्याचरण करने वाला व्यक्ति दूसरों के दिलों को जीतकर उनके दिलों में एक विशेष प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

5) सत्याचरण करने वाले व्यक्ति का शत्रु पक्ष भी सम्मान करता है।

6) सत्य का आचरण करने वाला संसार के सर्वोत्कृष्ट सुख को प्राप्त कर लेता है, जिसका नाम सन्तुष्टि है और अन्दर से प्रसन्न रहता है।

7) सत्यवादी व्यक्ति का भविष्य उज्जवल होता है। अर्थात उसे व्यक्तिगत रूप से भी भविष्य में दूसरे लोगों द्वारा अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त होता है।

8) सत्य बोलने से समाज में प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। पूर्ण सत्यवादियों का यश युगों–युगों तक बना रहता है। वह मनुष्य समाज में अमर हो जाता है। जैसे सत्यवादी हरिश्चन्द्र, श्रीराम चन्द्र आदि ।

9) सत्य बोलने से परिवार, समाज और राष्ट्र में परस्पर विश्वास और प्रेम का वातावरण बनता है, जिससे सभी को सुख मिलता है।

10) सत्यवादी को व्यर्थ की चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती है और असत्यवादी व्यर्थ की चिन्ताओं में जकड़ा रहता है, क्योंकि सत्य को छुपाने के लिए अनेक योजनायें बनानी पड़ती है ।

अस्तेय

परिभाषा :– वस्तु के स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु को शरीर से लेना, वाणी से लेने की बात कहना और मन से इच्छा भी न करना अस्तेय (चोरी त्याग) कहलाता है।

यदि कोई व्यक्ति शास्त्रविधि के अनुसार बिना स्वामी की आज्ञा लिये किसी भी वस्तु को लेता है, तो वह अस्तेय ही है और शास्त्रविधि से विरूद्ध यदि किसी भी वस्तु को स्वामी की आज्ञा लेकर भी यदि लेता है तो वह स्तेय अर्थात चोरी ही है। हम संसार में तरह–तरह की चोरी करते हैं, कोई कर (ट्रैक्स) की चोरी करता है तो कोई बिजली, तथा कोई पानी की चोरी करता है। कोई घूस लेकर चोरी करता है तो कोई घूस देकर। कोई शरीर से चोरी करता है तो कोई मन से तो कोई वाणी से चोरी करता है। विभिन्न स्वरूपों में चोरियाँ ही है।

जब तक हम मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग नहीं करते तब तक पूर्ण अस्तेय का पालन नही हो सकता। इसीलिए हमें तीनों स्तरों पर अस्तेय का पालन करना चाहिए।

अस्तेय पालन के लाभ

1) अस्तेय का पालन करने वाला शान्त, प्रसन्न और संतुष्ट रहता है।
2) अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति का स्वभाव अहिंसक हो जाता है तथा अहिंसा में भी सफलता पाकर दूसरों को कष्ट पीड़ा आदि नहीं पहुंचाता है।
3) अस्तेय का पालन करने वाला व्यक्ति प्रभुदर्शन का अधिकारी बन पाता है।
4) उत्तम–उत्तम पदार्थो का प्रयोग उत्तम–उत्तम ढंग से करने लग जाता है।
5) भय से मुक्त होकर सर्वथा आनन्दमय जीवन बिताता है।

ब्रह्मचर्य

परिभाषा :– गुप्त इन्द्रिय (जननेद्रिय) का संयम, वेदों का अध्ययन और ईश्वर के चिन्तन को ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

ब्रह्मचर्य के पालन की ही महिमा है कि रोगी निरोगी और कमजोर बलवान बन जाता है। मूर्ख विद्वान और नास्तिक आस्तिक बन जाता है। आज सर्वत्र समाज में

ब्रह्मचर्य पालन की कमी दिख रही है। जिसके परिणाम स्वरूप युवा पीढ़ी, जिसने समाज, तथा राष्ट्र को दिशा देनी थी। समाज को एक नया नेतृत्व प्रदान करना था, बड़े–बड़े रोगों से ग्रसित होकर महादुःख के सागर में निमग्न होती जा रही है। नये रोगों का जो पार्दुभाव सर्वत्र समाज में दिखाई पड़ रहा है, उसमें एक बहुत बड़ा कारण बह्मचर्य का अभाव है ।आज समाज में तरह–तरह के व्याभिचारी पैदा हो रहे है, जो इस जीवन के सार और मूलभूत आवश्यक ब्रह्चर्य की अनर्थक, तथ्यहीन और सारहीन व्याख्या करके युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित करने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। समाज में कुकुरमुत्ते की तरह फैल रहे इस तरह की बुद्धि के व्याभिचारी से समाज को मुक्त करना अत्यन्त आवश्यक है। जिसके बिना समाज में बह्मचर्य को पुनः स्थापित करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

वेदों का अध्ययन जब परम्परा से लुप्त हुआ तब से भिन्न–भिन्न तरह की सामाजिक कुरीतियों का भी जन्म हुआ है। शिक्षा के अभाव में समाज में बेरोजगारी, चोरी, व्याभिचार आदि सामाजिक रोगों का साम्राज्य फैलता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप समाज तरह–तरह के कष्टों में डूबता जा रहा है।

ईश्वर भक्ति के अभाव में समाज मे नास्तिकता फैलती जा रही है, जो कि समाज की अनेक बीमारियों की जड़ है। ब्रह्मचर्य के पूर्ण पालन से ही इन सभी बुराईयों और कुरीतियों पर विजय संभव है।

बह्मचर्य पालन के लाभ

1) ब्रह्मचर्य के पालन से शरीर स्वस्थ, निरोग, बलवान और सुडौल व आकर्षक बन जाता है।

2) शरीर के सभी अंग पुष्ट होकर अन्त तक कर्म करने में सक्षम रहते हैं ।

3) बुद्धि में सुक्षमता आती है। कम समय में अधिक कार्य करने की क्षमता आती है। अधिक मात्रा में समाज का कार्य करता है।

4) वेदों के अध्ययन से पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर प्राप्ति में सक्षम हो जाता है।

5) संसार के सभी पदार्थो का बोध सूक्षमता से हो जाता है।

6) ईश्वर चिन्तन से बड़े–बड़े सांसारिक कष्टों को हँसते हुए झेल लेता है।

7) अन्त में जीवन के परमोत्कर्ष को प्राप्त करके अन्तकाल तक मोक्ष सुख का आनन्द लेता है।

अपरिग्रह

परिभाषा :– मन, वचन, कर्म से किसी भी अनावश्यक वस्तु या विचार का संग्रह ना करना ही अपरिग्रह है।

आज संसार में सर्वत्र अधिक से अधिक वस्तुओं को एकत्रित करने की होड़ लगी हुई है। व्यक्ति वस्तुओं से अधिक सुख की भी अपेक्षा रखता है, पर ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। हमने साधन के रूप में सबसे पहले साईकिल बनायी, उससे जो समय और ऊर्जा बची उससे मोटर साईकिल और कारे बनाई, उससे जो ऊर्जा व समय बचा उससे जहाज बनाया, पर उससे भी जो समय और ऊर्जा बची उसका क्या प्रयोग किया है। यह किसी के भी सामने स्पष्ट नहीं है। बुद्धि के कार्य जैसे रटने आदि के श्रम से बचने के लिए कम्प्यूटर का आविष्कार किया । इससे जो समय और ऊर्जा बची उसका उपयोग क्या किया है ? इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि साधन अर्थात भौतिक उपलब्धि या प्राप्ति वस्तु साधन ही है। इसीलिए ये बात तो निश्चित रूप से समझनी चाहिए कि साधनों से सुख नहीं प्रत्युत दुःख ही है। क्योंकि वस्तुयें जितनी ज्यादा होगी उनके रखरखाव में उतना ही ज्यादा समय और ऊर्जा आपको लगानी पडेगी। तरह–तरह की चिन्ताओं से घिरना पडेगा। तो अन्ततः दुःख तो बढ़ेगा ही। इसके विपरीत जब हम सीमित साधनों का प्रयोग करगें तब इनसे मुक्ति मिलेगी। अधिक को एकत्रित करने में अधिक पाप के भागी हम बनते हैं। जैसे एक वस्त्र के बनाने में कपास की खेती से लेकर हमारे घर तक पहुँचने में जितने भी जीवों की हत्या होती है, उन सबका पाप यदि हमें लगता है तो एक वस्त्र के स्थान पर अधिक वस्त्र रखने पर कितने पाप होगें, इसका अनुमान आप सहज ही लगा सकते हैं। हम संसार में देखते हैं कि कोई व्यक्ति अत्यन्त धनवान है तो दूसरा व्यक्ति अत्यन्त गरीब, जिसके पास खाने की रोटी भी नहीं हैं, तो दूसरों के अधिकार को छीनने का पाप भी हमें लगेगा ।

अधिक अर्जन करने के पीछे अनेकों कष्ट भोगने पड़ते हैं इससे बचकर मुक्ति के प्रति अधिक पुरूषार्थ करना चाहिए। दिखावे से ग्रस्त होकर जाने व अनजाने में अत्याधिक हिंसा हो रही है। हमें सावधानी रखते हुए अधिक से अधिक पापों से बचने का प्रयास करना चाहिए।

अपरिग्रह पालन के लाभ

1) अपरिग्रह का पालन करने से अहिंसा में व्यापकस्तर पर वृद्धि होती है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर आनन्दित रह सकता है।

2) आत्मशांति व तृप्ति मिलती है, मन प्रसन्न होता है।

3) अधिक संग्रह करने के लिए जो अतिरिक्त झूठ, छल, कपट, अन्याय, ईर्ष्या और द्वेषादि का सहारा लेना पड़ता है उससे मुक्ति मिलती है।

4) भौतिक पदार्थो की नश्वरता का बोध होता है, कि कोई भी वस्तु मेरे साथ सदा नहीं रह सकती न ही कोई मेरे साथ जायेगी ।

5) आत्मचिन्तन करने का पर्याप्त समय मिलता है, जिससे आत्मदर्शन के अधिकारी बनते है ।

योग का द्वितीय अंग नियम

परिभाषा :– नि:उपसर्ग पूर्वक यम उपर में धातु से नियम शब्द सिद्ध होता है। जिस प्रकार से यम का अर्थ दु:खों से छूटना, उसी प्रकार नियम का अर्थ है विशेष रूप से दु:खों से छूटना ।

यम व नियम में अन्तर

हमारा व्यवहार मात्र अपने शरीर से ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज के साथ होता है। हमें समाज की भी आवश्यकता पड़ती है तो पड़ोसियों को भी आवश्यकता पडती है तो समाज के साथ व्यवहार करने में परिवार व राष्ट्र के साथ साथ व्यवहार करने में परिवार या पड़ोसियों के साथ व्यवहार करने में अनेक दु:खों का सामना करने की शक्ति हमें यम देता है तो नियम हमारे शरीर के साथ व्यवहार को दुरस्त करता है। स्पष्ट शब्दों में कह सकते है के बाह्य व्यवहार की कला यम तो अन्त: व्यवहार की कला नियम सिखाती है।

नियम विभाग

नियम पाँच प्रकार के होते है:–

1) शौच 2) सन्तोष 3) तप 4) स्वाध्याय 5) ईश्वरप्रणिधान

शौच

परिभाषा :– शुद्धि, निर्भीकता, पवित्रता को शौच कहते है। शुद्धि दो प्रकार की होती है।

1) बाह्य शुद्धि 2) आभ्यान्तर शुद्धि

बाह्य शुद्धि :– वस्त्र, पात्र स्थान, पात्र भोजन तथा धनोपार्जन को पवित्र रखना आदि बाह्य–शुद्धि के अन्तर्गत आते है। हम जहाँ कहीं भी रहें, उस स्थान की सफाई पर ध्यान रखना चाहिए, झाड़ू या जल आदि से सर्वदा शुद्धि में तत्पर रहना चाहिए। शरीर को स्नान के माध्यम से पवित्र रखना चाहिए। इसके साथ–साथ अर्थ की शुद्धि भी होनी चाहिए।

आभ्यान्तर शुद्धि – विद्या, ज्ञान, सत्संग, सेवा, स्वाध्याय, ईश्वर चिन्तन आदि के द्वारा अन्दर की शुद्धि होती है, विद्या से बुद्धि, ज्ञान से कर्म, सत्संग से आचरण, सेवा से प्रवृत्ति और स्वाध्याय तथा ईश्वर चिन्तन से विचार और कर्मो से पवित्र होकर मनुष्य सदा आनन्द में रहते हैं ।

आज संसार में बड़ी ही हास्यपद विडम्बना सर्वत्र दिख रही है कि व्यक्ति अन्दर से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से युक्त होते हुए भी अपने को पवित्र ही मानता है। परन्तु वह परमात्म सुख तथा आध्यात्म सुख से सर्वथा वंचित होता जा रहा है। बाहर की शुद्धि के साथ–साथ अन्दर की शुद्धि को नजर–अन्दाज नही किया जा सकता।

देखो ये कैसी विडम्बना है कि शरीर को वस्त्रों से शुद्ध करके व्यक्ति चोरी, डकैती, व्याभिचार और घूसखोरी करता है। ये सारी बातें देखकर ऐसा लगता है कि क्या बाह्य शुद्धि का ही प्रभाव है या आभ्यान्तर–शुद्धि का कुप्रभाव । अतः अन्दर की शुद्धि भी विशेष और अधिक महत्वपूर्ण है ।

शौच के लाभ

क) बाह्य शौच से

1) नित्य पदार्थो के प्रति आकर्षण, प्रेम, श्रद्धा व लगाव कम उत्पन्न होता है।
2) शरीर आदि भौतिक पदार्थो की नश्वरता का बोध होता है।
3) स्वयं व अन्यों के प्रति आशक्ति नहीं होती है।
4) मन में प्रवित्रता, निर्मलता तथा शुद्धि की भावना उद्दीप्त होती है ।
5) स्वाध्याय तथा योग साधन के लिए अधिक समय मिलता है।

ख) आभ्यान्तर शौच से

सर्वप्रथम बाह्य शुद्धि से मन प्रसन्न होता है। मन प्रसन्न रहे तो एकाग्रता बढ़ती है एकाग्रता से इन्द्रिय जय और उससे समाधि सिद्ध होती है। ये हुआ आध्यात्मिक पक्ष परन्तु आभ्यान्तर की सामाजिक स्तर पर भी काफी उपयोगिता है। समाज की अनेक बीमारियाँ इस अन्तर शौच के पालन से ही समाप्त हो

सकती है। अन्तर पवित्र व्यक्ति किसी को धोखा नही देगा और ना ही किसी से छल करेगा तो समाज में शान्ति तो स्वभाविक ही आयेगी। व्याभिचार, कदाचार, घूसखोरी आदि अनेक द्वेषों से इसके माध्यम से निवृत्त हो सकते है। सामाजिक दृष्टि से भी ये शौच अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है। इसीलिए इस शौच के लिए आलस्य रहित होकर नित्य प्रयासरत रहना चाहिए।

सन्तोष प्राप्त होता है

परिभाषा :– अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण पुरूषार्थ करना तथा अपनी योग्यता व अधिकार के आधार पर जो फल प्राप्त होता है, उससे सदा सन्तुष्ट रहना ही सन्तोष है।

हताश या निराश न होकर, हाय–हाय न कहते हुए अपनी सामर्ध्य के आधार पर, अधिक से अधिक फल प्राप्त करने की चेष्टा सदा करनी चाहिए। ये बात सदा याद रखनी चाहिए की सन्तोष का मतलब पुरूषार्थहीन होना कदापि नहीं है। कुछ लोग कर्महीन होकर बैठ जाते है और समझते हैं कि वे सन्तुष्ट हैं ये धारणा उनकी बिल्कुल गलत है। वस्तुतः इसे सन्तोष कदापि न कहना चाहिए। ये निकम्मापन और कर्महीनता की निशानी है।

सन्तोष से लाभ

1) मन के विचार शुद्ध और पवित्र होते है ।
2) अति उत्तम (अत्युत्तम) सुख की प्राप्त होती है।
3) अधिक पुरूषार्थ करने की प्रेरणा मिलती है ।
4) मन शान्त, प्रसन्न और एकाग्र होता है।
5) शरीर पर सुप्रभाव पड़ता है, जिससे व्यक्ति स्वस्थ रहता है तथा असन्तोष के कुप्रभाव से बच जाता है ।

तप

परिभाषा :– धर्म सत्य, वेद और ईश्वर के मार्ग पर चलते हुए अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर होते रहना ही तप है।

स्वामी वेदव्यास जी ने कहा है कि अतपस्वी आदमी कभी भी योग सिद्ध नहीं कर सकता, अपनी योग्यता और अधिकार के अनुसार हमें साधनों का प्रयोग तो करना चाहिए पर ऐसी शक्ति हमारे अन्दर होनी चाहिए जिससे कि उपलब्ध साधनों के अभाव में भी प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्य की तरफ बढ़ सकें ।

आज तप के नाम पर संसार भर में अनेक कुरीतियों, ढोगों, पाखण्डों का जन्म हुआ है। कोई दो महीने से हाथों को ऊपर खड़े करके अपने को तपस्वी मान रहा है तो कोई पेड़ से उल्टा लटक कर तप कर रहा है, कोई अपने चारों तरफ अग्नि जलाकर बैठ जाता है तो कोई अपने शरीर को कष्ट देने पर तुल जाता है, इस प्रकार के अनेक शारीरिक अत्याचारों को ही लोगों ने तप मान लिया है और इन्ही तथाकथित पाखण्ड़ी तपस्वियों ने ऋषियों की प्राचीन विद्या, योग्यता, निपुणता और तपस्या को शर्मसार कर दिया है। इसी कारण तप के नाम से जन मानस उन्ही शारीरिक कष्टों को जानता है। इसीलिए इस विपरीत परिस्थिति में हमारा कर्त्तव्य बन जाता है कि वास्तविक तप को पहचाने और अपने जीवन में धारण करके ज्यादा से ज्यादा आनन्दित और प्रफुल्लित हो सकें ।

तप से लाभ

1) तपस्वी व्यक्ति आत्मदर्शन और प्रभुदर्शन के अधिकारी बन जाते है।
2) तप करने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शांति की प्राप्ति होती है।
3) तपस्वी व्यक्ति पहाड़ जैसे दु:ख का अहसास भी तिनके के समान करता है।
4) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विश्वास में वृद्धि होती है।
5) तपस्वी व्यक्ति त्रिविध तापों (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) से बचा रहता है।

स्वाध्याय

परिभाषा :– जिन शास्त्रों के अध्ययन से समस्त दु:खों की निवृत्ति हो उन शास्त्रों का निरन्तर अध्ययन और प्रणव अर्थात **ओ३म्** का नित्य जाप करना स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्याय शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थो में होता है। स्वाध्याय शब्द सु + अध्याय इन शब्दों के योग से बना है। जिसका तात्पर्य है सु अर्थात सुन्दर और अध्याय अर्थात पढ़ना। स्वाध्याय अपनी आत्मा का अध्ययन (Self Study) भी स्वाध्याय कहलाता है अर्थात सदा आत्मचिन्तन में लगे रहना। वर्तमान काल में जब कि ऋषि–मुनियों के ग्रन्थ और वेदादि सत्य शास्त्र विलुप्त होते जा रहे हैं। स्वाध्याय की अत्यन्त आवश्यकता है।

स्वाध्याय के लाभ

1) स्वाध्याय से मन की एकाग्रता बढ़ती है। ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा और रूचि बढ़ती है।

2) स्वाध्याय माता के समान हमारी रक्षा करता है, और पतन से बचाता है।

3) स्वाध्याय से आप सुखी तृप्त और शान्त होकर अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर होते है।

4) हानिकारक वस्तुओं से मिलने वाले दुःखों से बचे रहते हैं।

5) स्वाध्याय से संसार के सभी पदार्थो का यथावत् बोध हो जाता है।

ईश्वर-प्राणिधान

परिभाषा :– अपने मन, वाणी, कर्म सभी साधनों से किये जा रहे कर्मो को परमात्मा को अर्पित कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है। मन, बचन, कर्म से कर्म करते हुए सदा ईश्वर को अपने समक्ष अथवा अपने प्रत्येक कर्म में ईश्वर को साक्षी मानते हुए कर्म करना ईश्वर –प्राणिधान है।

ईश्वर के सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ आदि गुणों को अन्तरआत्मा से स्वीकार करते हुए कर्म करना और सांसारिक सुखों की इच्छा न करते हुए परब्रह्म की प्राप्ति का लक्ष्य ही सम्मुख रखना ईश्वर–प्राणिधान है। इसका अभ्यास निरन्तर करते रहना चाहिए ।

ईश्वर प्राणिधान से लाभ

1) प्रभु दर्शन का सौभाग्य शीघ्र प्राप्त होता है।

2) ईश्वर प्राणिधान करने वाले व्यक्ति को बना अपना लेता है।

3) वह मनुष्य ईश्वर का अत्यन्त प्यारा हो जाता है।

4) सभी सांसारिक पदार्थो के प्रति आकर्षण तथा ममत्व (मैं और मेरा) की भावना समाप्त हो जाती है। जिससे संसार की वास्ताविकता का बोध होकर जीव मुक्त हो जाता है।

5) ईश्वर के प्रति अपने समस्त कर्मो को अपर्ण करने के कारण किसी प्रकार का अनुचित कर्म साधक के द्वारा नहीं होता तथा इस प्रकार से वह अत्यन्त निर्मल हो जाता है।

योग का तृतीय अंग – आसन

आज के समय में व्यापक आसन का जितना प्रचार प्रसार किया जा रहा है उतना अन्य बातों का नहीं। आजकल आसन के नाम से जो क्रियायें करवाई जाती है उन्हें दो

भागों में बांट कर देखें तो स्पष्टता रहती है। कुछ आसन शारीरिक मानसिक दृष्टि से स्वास्थ्य प्रद है तो कुछ आसन प्रणायाम धारण, ध्यान समाधि आदि की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

आसनों पर सूक्ष्मता से विचार करने से यह सार निकलता है कि यह परोक्ष रूप से समस्त दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति का साधनरूप हैं। इस बात की पुष्टि महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणीत पतंजलि योगदर्शन पर दृष्टि डालने से होती है।

अभ्यास साधना के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व रखते है। विधिपूर्वक आसन का अभ्यास करने वाला व्यक्ति योगाभ्यास के योग्य बनकर मोक्ष मुक्ति अपवर्ग के मार्ग पर चलने का अधिकारी बन जाता है। आसन के सिद्व होने पर प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। आसन का बाह्य स्थूल रूप शारीरिक हैं, किन्तु यह आगे भी मानसिक साधना, धारण, ध्यान, समाधि का आधार बनता है।

परिभाषा– योग शास्त्रकार श्री महर्षि पतंज्जलि जी महाराज कहते हैं कि "स्थिरसुखमासनम् (यो.द. 2.46) अर्थात स्थिरता पूर्वक, सुखपूर्वक बैठकर जिसमें ध्यान किया जा सके उसे आसन कहते है ।

आसन की परिभाषा लिखते हुए स्थिरता और सुखपूर्वक बैठने की बात कही जा रही है। अधिकांश ध्यानात्मक आसनों की स्थिति में शरीर को सीधा अर्थात गर्दन, छाती व कमर को सीधी रेखा में रखना होता है।

आसनों की व्याख्या करते हुए महर्षि वेद व्यास जी ने पद्मासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रयासन, पर्यडिकासन, क्रौज्वनिवदनासन, हस्तिनिषदनासन, उष्ट्रनिषादनासन और समसंस्थानासन का उल्लेख कर आदि शब्द का भी प्रयोग किया है। जिससे अन्य भी कोई आसन जिसमें सुखपूर्वक बैठा जा सके, को ग्रहण किया जा सकता है।

महर्षि पतंज्जलि द्वारा आसन का मुख्य प्रयोजन स्वास्थ्य लाभ न होकर समाधि को प्राप्त करना ही है। हमें ये समझने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिए कि इसका मुख्य प्रयोजन शरीर को निरोग करना ही है। हाँ स्वास्थ्य लाभ गौण प्रयोजन अवश्य है और किसी भी बड़े–बड़े लक्ष्य की सिद्धि के लिए छोटे लक्ष्य को भी सामने रखकर चलें तो कोई हानि नहीं है ।

यदि सूक्षमता से विचार किया जाय तो पता चलता है कि मनुष्य जो भी कोई उचित क्रिया करता है, जिस क्रिया को करने से उद्देश्य में बाधा नहीं आती तो वह क्रिया

समाधि के लिए ही की जा रही है। इतना अन्तर अवश्य होता है कि कोई क्रिया सीधी बनती है तो कोई परोक्षरूप से। यदि संक्षेप में कहा जाये तो कहा जा सकता है कि प्रत्येक उचित क्रिया (योग) समाधि के लिए ही की जाती है। हाँ कोई उद्देश्य बनाकर कर लेता है तो कोई बिना उद्देश्य के ही करता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति दुःखों से छूटने के लिए ही संसार में क्रियाशील हो रहा है। पर इतना अवश्य है कि यदि उद्देश्य को समक्ष रखकर चलें तो लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्र हो सकती है। समाधि का लाभ शीघ्र ले सकते है और यदि उद्देश्य बनाकर न चलें तो उचित कर्म देरी से योग–समाधि–ईश्वर प्राप्ति करा पायेगा। इसे जीवन में उतार कर ही हम अपने जीवन को सफलता और धन्यता के मार्ग पर ले जा सकते है और सबकी उन्नति समझना ही योग है – योगाभ्यास है, इत्यादि ऋषि प्रणीत के सिद्धान्तों को समझकर ही हम महर्षि द्वारा प्रतिपादित योग के तीसरे अंग आसन को ठीक प्रकार से समझ पायेगें ।

आसन के लाभ

1) आसनं–सिद्धि से समाधि की सिद्धि होती है ।
2) भूख, प्यास, सर्दी–गर्मी आदि क्लेशों को सहने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।
3) मन एकाग्र होता है।
4) शीघ्र ध्यान लगने लग जाता है।

योग का चतुर्थ अंग – प्राणायाम

परिभाषा :– किसी भी सुखदायक आसन पर स्थिरतापूर्वक बैठकर मन की चंचलता को रोकने के लिए श्वास–प्रश्वास की गति को रोकने स्वरूप जो क्रिया की जाती हैं, उस क्रिया का नाम प्राणायाम है ।

प्राणायाम के अभ्यास से शरीर ओजपूर्ण हो जाता है। मस्तिष्क में दिव्य प्रकाश का उदय होता है। मुखमण्डल पर तेजस्वी आभा प्रकट हो जाती है। बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म होकर कठिन विषयों को बहुत ही कम समय में ग्रहण कर लेती है। शरीर के सभी तन्तु क्रियाशील हो जाते है शरीर के सभी कीटाणु नष्ट हो जाते है और जीवनदायी अणुओं का नित्य सर्जन होने लगता है। शरीर सभी रोगों से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है (**विशेष परिभाषा, प्रकार, लाभ व वर्णन प्राणायाम प्रकरण में देखें**)

योग का पंचम अंग – प्रत्याहार

परिभाषा :– सभी स्थूल इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर मन के साथ–साथ बांधें रखना या बांध देना प्रत्याहार कहलाता है।

जिस प्रकार मधुमक्खियों के छते से रानी मक्खी के उड़ जाने पर अन्य सहयोगी मक्खियाँ भी उड़ जाती है। उसके बैठ जाने पर सहयोगी मक्खियाँ भी बैठ जाती है। ठीक इसी प्रकार मन को इधर–उधर विषयों में जाने से इन्द्रियाँ भी वहीं जाती है और मन को एकाग्र करने से इन्द्रियाँ भी मन के साथ एकाग्र हो जाती है ।

प्रत्याहार के लाभ

1) समस्त इन्द्रियों को जीतकर संयमी बन जाता है ।
2) बुद्धि अत्यन्त तीव्र और सूक्ष्म हो जाती है ।
3) सांसारिक विषय भोगों से ऊपर उठ जाता है ।
4) अपनी इच्छा से इन्द्रियों को जहाँ चाहता है, लगा देता है ।
5) प्रभु दर्शन का पात्रत्व पा लेता है।

योग का षष्ठ अंग – धारणा

परिभाषा :– अपने शरीर के किसी केन्द्र पर अपने मन को बांधना या रोक देना ही धारणा है। धारणा के अभ्यास के लिए ऋषियों ने अनेक स्थानों का निर्देश किया है, जिनमें प्रमुख हैं मस्तक, भूमध्य नासिकाग्र, कन्ठ, हृदय, नाभि आदि। धारणा के अभ्यास के पश्चात ध्यान आदि का अभ्यास करना चाहिए केवल इसी में नहीं रहना चाहिए। अनेक बार देखा गया है कि धारणा का अभ्यास करते–करते साधक इसी को ध्यान भी मान लेते है। ऐसी भ्रान्ति में कदापि नहीं फंसना चाहिए। यदि धारणा ही अन्तिम स्थिति होती तो शास्त्रकार आगे ध्यानादि अंगों का वर्णन न करते ।

धारणा का अभ्यास तो मात्र मन रूपी भूमि को ध्यान आदि उच्च अभ्यास को रोकने के लिए शोधन मात्र है । धारणा से शुद्ध हुए मन को ध्यान आदि में लगाया जाता है।

अधिक लम्बे काल तक धारणा का अभ्यास नहीं करना चाहिए, क्योंकि धारणा, ध्यान, समाधि आदि का मुख्य लक्ष्य तो परमात्मा को प्राप्त करना ही है और परमात्मा का दर्शन तो अन्दर ही होता है। इसीलिए धारणा के तुरन्त बाद ध्यान आदि का अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिए ।

धारणा के लाभ

1) ध्यान की पूर्व तैयारी होती है ।

2) ध्यान सिद्धि में सफलता मिलती है ।

3) मन के यर्थाथरूप का बोध हो जाता है ।

4) मन में सदा प्रसन्नता, शान्ति और तृप्ति बनी रहती है ।

5) मानसिक विकार दूर और मानसिक शुद्धता प्राप्त होने लगती है ।

योग का सप्तम अंग – ध्यान

परिभाषा :– शरीर धारणा स्थल (मस्तक, भूमध्य आदि) पर मन को रोककर किसी परोक्ष वस्तु या ईश्वर का दर्शन करने के लिए निरन्तर चिन्तन करना, बीच में अन्य किसी विचार को न आने देना ही ध्यान कहलाता है ।

ध्यान में प्रभु के जिस एक गुण का चिन्तन करें सदा उसी से सम्बन्धित विषय को ध्यानं निर्विषय मनः आदि शास्त्र बचनों का अभिप्राय भी यही है। कुछ लोग इसका अर्थ कुछ भी न विचारना, सर्वथा विचार शून्य हो जाना कहते है। जो शास्त्रीय मान्यताओं के अत्यन्त विरूद्ध है। किसी एक निश्चित विषय का अखण्ड–चिन्तन चलते रहना ही ध्यान है। कुछ न सोचना और न विचारना मूर्छा (बेहोशी) होती है ।

ध्यान के लाभ

1) ध्यान करने से पूर्ण ज्ञान अर्थात पूर्ण विवेक हो जाता है ।

2) सूक्ष्मता से सत्य का अनुभव होता है।

3) ध्यान करने से विलक्षण एकाग्रता की प्राप्ति होती है।

4) उचित अनुचित के विवेचन की क्षमता प्राप्त होती है।

5) कम समय में अधिकाधिक कार्य क्षमता प्राप्त होती है ।

6) जीवन सदा निराशा, दुःख, विषाद, चिन्ता और तनाव आदि से रहित होकर उत्साहित, सुखी, चिन्तामुक्त और तनावरहित रहेगा ।

7) अध्ययन, लेखन, भाषण आदि बौद्धिक कार्यो मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की जा सकती है ।

8) प्रभु–दर्शन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है ।

9) ध्यानी व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से मुक्त हो जाता है ।

10) रक्तचाप (Blood Pressure) हृदय रोग आदि नहीं होते है ।

11) नाड़ी तन्त्र (Nerves System) सुव्यवस्थित रहता है ।

12) नाड़ी तन्त्र के ठीक होने से अनेक रोग स्वत: ठीक हो जाते है ।

13) जीवन तनाव (Tention) Volkn (Depretion) आदि भयानक रोग स्वयमेव समाप्त हो जाते है, तथा जिन्हें नहीं है, उनके पास आते ही नहीं ।

योग का अष्टम् अंग – समाधि

परिभाषा :– ध्यान का अभ्यास करते–करते जब ध्यये विषय (ईश्वर आदि) का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाये, उस स्थिति को समाधि कहते हैं ।

ध्यान में प्रभु के जिस युग का चिंतन किया जाता है, समाधि से उसी गुण या स्वरूप का दर्शन होता है, अन्यों का नहीं। जैसे मान लीजिए यदि ईश्वर दयालु है तो आदि गुणों का ही समाधि में प्रत्यक्ष होगा, सर्वज्ञता आदि गुणों का नहीं ।

समाधि के लाभ

1) जीवन के परम–लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

2) मन के समस्त विकार दूर हो जाते हैं ।

3) अविद्या रूपी क्लेश का समूल विनाश हो जाता है।

4) मन समस्त विकारों से रहित होकर अनेक शुभ गुणों से भर जाता है।

5) संसार के आवागमन से अनन्तकाल तक मुक्ति मिल जाती है ।

मुद्रा - प्रकरण

प्राण साधना में अष्टाचक्रों के अलावा मुद्राओं का भी विशेष महत्व है। मुद्राएं आसनों का विकसित और परिष्कृत रूप हैं। इसके साथ–साथ यह भी सत्य है कि शारीरिक मुद्राओं का प्रभाव आन्तरिक भावों पर भी पड़ता है ।

शारीरिक मुद्रा बदलने से भावों में परिवर्तन आता है। आसनों में इन्द्रियों की प्रधानता और प्राणों की गौणता होती है, जबकि मुद्राओं में इन्द्रियों की गौणता और प्राणों की प्रधानता होती है । शास्त्रों में इन मुद्राओं की मुक्तिकण्ठ से प्रशंसा की गई है। शास्त्रकार ने कहा है कि – "नास्ति मुद्रासमं किञ्ित् सिद्धीदं क्षितिमण्डले" अर्थात् इस पृथ्वी पर मुद्रा के समान सफलता देने वाला अन्य कोई कर्म नहीं है। सुविधा की दृष्टि से समस्त मुद्राओं को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं ।

1) **तत्व–नियात्मक मुद्रायें**

2) **प्राणपद मुद्रायें**

यह समस्त संसार पाँच तत्वों के मेल से बना है। संसार रूपी यह शरीर भी उन्हीं पाँच तत्वों के संयोग से बना है । इसलिए इसमें अग्नि का अंश भी है, तथा वायु का अंश भी है, आकाश का अंश है तो पृथ्वी और जल का अंश भी है। हमारे हाथ की पाँच अंगुलियाँ पाँच तत्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अंगुष्ठ अग्नि का, तर्जनी वायु का, मध्यमा आकाश का, अनामिका पृथ्वी का और कनिष्ट जल तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। इन पञ्च तत्वों की समता से शरीर रोग रहित रहता है और विषमता से रोगयुक्त हो जाता है ।

मुद्रा–विज्ञान में इन्ही शरीरगत पाँच तत्वों को नियमित करके शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों, अवयवों तथा उनकी क्रियाओं को नियमित किया जाता है तथा शरीर की सुषुप्त शक्तियों को जागृत करके शरीर, मन और बुद्धि को पूर्ण शुद्ध पवित्र और एकाग्र करने का प्रयास किया जाता है।

इन हस्त–मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र पड़ता है। इनका असर शरीर में तुरन्त दिखने लगता है। इन मुद्राओं के अभ्यास के सामान्य नियम–

1) ये मुद्राएँ सामान्य रूप से कभी भी चलते–फिरते, उठते–बैठते या खड़े–खड़े भी कर सकते हैं ।

2) किसी ध्यानयोग्य आसन तथा वज्रासन, पद्मासन या सुखासन आदि में बैठकर करें तो ज्यादा लाभकारी है ।

3) इन मुद्राओं का अभ्यास प्रतिदिन 10 मिनट से शुरू करके 30 मिनट या अधिक से अधिक 45 मिनट तक कर सकते हैं ।

4) इनका अभ्यास दिन में दो–तीन बार भी कर सकते हैं ।

5) मुद्राओं के अभ्यास के समय जिन अंगुलियों का प्रयोग न हो उन्हें सीधी रखें ।

मुद्रा के प्रकार

1) ज्ञान मुद्रा

मुद्रा प्रकरण में सबसे प्रमुख और प्रधान मुद्रा ज्ञान–मुद्रा ही है। इसको ध्यान मुद्रा भी कहते हैं, क्योंकि ध्यान में भी इसी मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। अंगुष्ठ और तर्जनी दोनों को एक–दूसरे से मिलाकर शेष तीनों अंगुलियों को सीधे रखना होता है।

लाभ

1) धारणा और ध्यान में तीव्रता से उन्नति होती है ।

2) एकाग्रता बढ़कर बुद्धि तीव्र हो जाती है ।

3) नकारात्मक विचार समाप्त हो जाते हैं और नित्य नये–नये सकारात्मक विचारों का उदय होता है ।

4) इस मुद्रा के अभ्यास से स्मरण शक्ति में असीम वृद्धि होती है इसीलिए इसका अभ्यास बच्चों को तो अवश्य ही करना चाहिए ।

5) मस्तिष्क में स्थित सभी कोशिकाओं, स्नायु–तंत्रों आदि सभी को ताकत और पुष्टि मिलती है, जिसके फलस्वरूप सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा आदि अनेक रोगों का इलाज स्वयं हो जाता है।

6) क्रोध समाप्त हो जाता है। अधिक अच्छे परिणाम के लिए इस मुद्रा के बाद प्राण–मुद्रा का भी अभ्यास करते रहना चाहिए ।

2) वायु मुद्रा

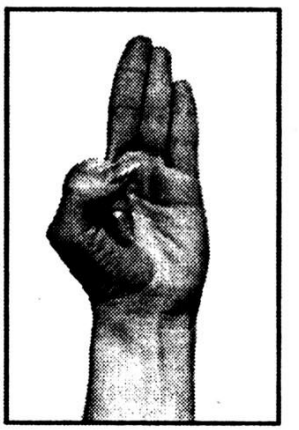

तर्जनी अंगुलि (Index Finger) को अंगुष्ठ (Thumb) के मूल में लगाने और अंगुठे को हल्का दबाकर रखने से वायु–मुद्रा बनती है।शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहेंगी ।

लाभ

1) चूंकि इसका नाम वायु–मुद्रा है, इसीलिए वायु सम्बन्धी रोग जैसे–गठिया, सन्धिवात, अर्थराईटिस, आदि ठीक हो जाते हैं ।

2) इसके अतिरिक्त पक्षाघात, कम्पवात, सियाटिका, घुटने का दर्द तथा गैस बनना आदि रोग दूर हो जाते हैं ।

3) गर्दन व मेरुदण्ड के रोगों में भी आराम मिलता है ।

4) रक्त–परिभ्रमण (Blood Circulation) सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं ।

3) शून्य– मुद्रा

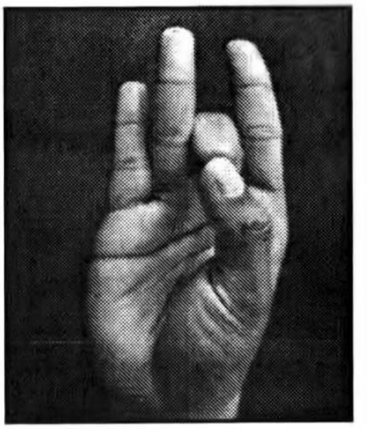

मध्यमा अंगुलि (Middle Finger) आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। इसको अंगुष्ठ के मूल में लगाकर अंगूठे से दबाकर रखते हैं। शेष अंगुलियाँ सीधी रहेंगी ।

लाभ

1) इस मुद्रा के अभ्यास से कान का बहना, बहरापन तथा कम सुनाई देना आदि रोग शीघ्र समाप्त हो जाते हैं।

2) अस्थियों की कमजोरी तथा हृदय रोग भी ठीक हो जाते हैं ।

3) मसूड़ों की पकड़ मजबूत होती है। तथा मसूड़े सम्बन्धी अनेक रोग यथा दाँतों से पीब आना, दाँतों का हिलना आदि अनेक रोग दूर हो जाते हैं ।

4) गले के अनेक रोग एवं थायराइड़ आदि में भी लाभ मिलता है ।

सावधानी

इस मुद्रा का अभ्यास चलते–फिरते या भोजन करते समय कदापि न करे, प्रत्युत किसी उचित आसन पर बैठकर करें ।

4) पृथ्वी मुद्रा

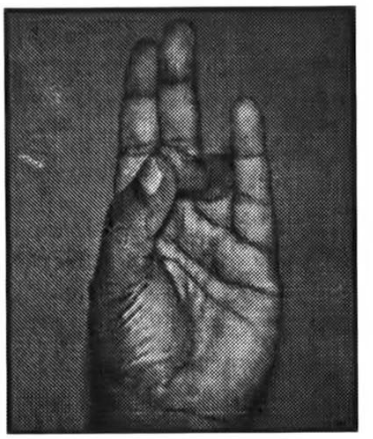

अनामिका और अंगुष्ठ के अग्रभागों को मिलाकर रखने तथा शेष तीन अंगुलियों को सीधा रखने से पृथ्वी मुद्रा बनती है ।

लाभ

1) इसके निरन्तर अभ्यास से शारीरिक दुर्बलता, भार की अल्पता तथा मोटापा आदि अनेक समस्यायें दूर हो जाती हैं ।

2) इस मुद्रा के अभ्यास से पाचन तन्त्र सशक्त रूप से क्रियाशील रहता है।

3) शरीर जीवनी शक्तियों से भर जाता है तथा सात्विक गुणों का विकास होता है।

4) अनेक प्रकार के विटामिनों की कमी दूर हो जाती है ।

5) शरीर में स्फूर्ति, कान्ति और तेजस्विता का संचार होता है और मुखमण्डल अत्यन्त कान्तिमय हो जाता है।

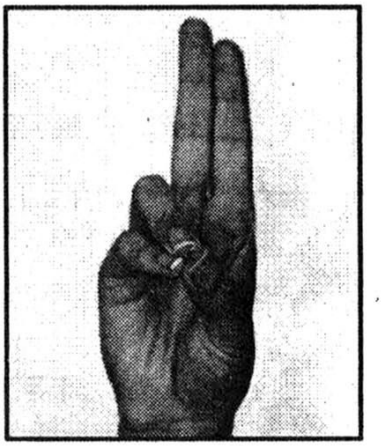

5) प्राण–मुद्रा

यह मुद्रा कनिष्ठ, अनामिका तथा अंगुष्ठ के अग्रभागों को परस्पर मिलाने से बनती है। शेष दो अंगुलियाँ सीधी रहेगी।

लाभ

1) इस मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से प्राण की सुशुप्त शक्तियों का जागरण होता है तथा शरीर स्फूर्ति, आरोग्य और ऊर्जा से भर जाता है ।

2) इस मुद्रा के अभ्यास से नेत्र–ज्योति बढ़ती है, तथा नेत्र–सम्बन्धी अनेक रोग दूर हो जाते हैं ।

3) शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और विटामिनों की कमी दूर होती है।

4) अनिद्रा में इसके अभ्यास के साथ–साथ ज्ञान–मुद्रा का अभ्यास भी किया जा सकता है ।

6) अपान–मुद्रा

अंगुष्ठ, मध्यमा एवं अनामिका के अग्रभागों को स्पर्श करने और शेष दोनों अंगुलियों को सीधा रखने से अपान मुद्रा बनती है ।

लाभ

1) शरीर के विजातीय तत्व बाहर निकल जाते हैं, फलतः शरीर शुद्ध और निर्मल होने लगता है ।

2) पेट के अनेक रोग जैसे – बवासीर, वायु विकार मधुमेह, मूत्रावरोध गुर्दो के दोष, दाँतों के विकार आदि दूर हो जाते हैं ।

3) हृदय रोग में भी लाभकारी है ।

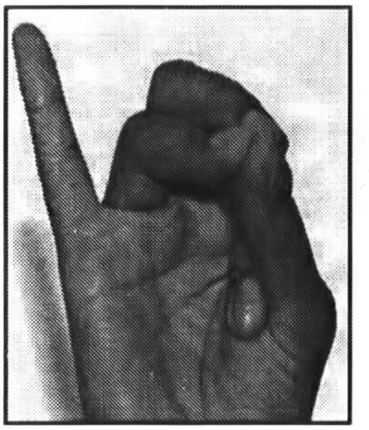

7) अपान–वायु–मुद्रा

अपान मुद्रा और वायु–मुद्रा इन दोनों को एक साथ मिलाने से यह मुद्रा बनती है अर्थात् मात्र कनिष्ठ अंगुली सीधी रहे ।बाकी सारी जुड़ी रहेंगी ।

लाभ

1) हृदय और वात रोगों को दूर करके आरोग्य को बढ़ाती है ।

2) दिल का दौरा पड़ने पर इस मुद्रा के करने से आराम मिलता है ।

3) सिरदर्द, दमा व उच्च रक्तचाप में भी लाभकारी है ।

4) सीढ़ियों पर चढ़ने से पाँच–सात मिनट पूर्व यह करने से काफी आराम मिलता है ।

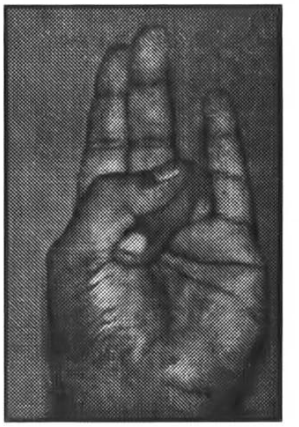

8) सूर्य–मुद्रा

अनामिका अंगुली को हथेली के बीच में लगाकर उसी हाथ के अंगूठे से दबाएँ।

लाभ

1) इस मुद्रा का अभ्यास मोटापे में बहुत फायदेमन्द होता है

2) शरीर में सन्तुलन आता है और शरीर सुडौल, भव्य और आकर्षक बन जाता है।

3) शरीर में उष्णता की वृद्धि होती है, फलतः मन्दाग्नि दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है ।

4) तनाव में कमी होती है और शक्ति का विकास तथा रक्त में कालेस्ट्राल कम हो जाता है।

5) इसके अभ्यास से मधुमेह यकृत (जिगर) के दोष दूर हो जाते हैं ।

6) गर्मी के दिनों में इसका अभ्यास कम करना चाहिए ।

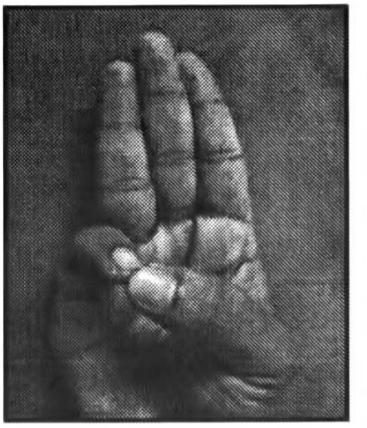

9) वरुण–मुद्रा

कनिष्ठा अंगुली को अंगूठे से लगाकर हल्का–हल्का दबाएँ। कफ प्रकृति वाले को इसका अभ्यास कम करना चाहिए ।

लाभ

1) इसके अभ्यास से शरीर का रूखापन नष्ट हो जाता है और चमड़ी चमकीली और मुलयाम हो जाती है ।

2) चर्मरोग, रक्त विकार, कील, मुँहासे, आदि सभी प्रकार के चर्मरोग दूर हो जाते है।

3) चेहरे पर अद्‌भुत चमक और कान्ति आ जाती है ।

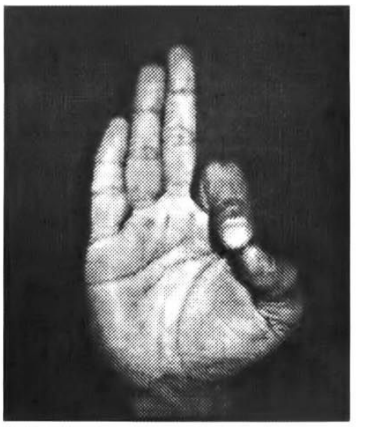

10) धारणा–शक्ति–मुद्रा :
लिंग मुद्रा :

सम्बन्धित चित्र के अनुसार मुट्ठी बाँधे तथा बायें हाथ के अंगूठे को खड़ा रखें, यह मुद्रा सर्दी–जुकाम, दमा–खाँसी, साइनस, लकवा आदि बीमारियों में लाभकारी है। इसके

अभ्यास के समय पौष्टिक भोजन जैसे फल या फलों का रस, घी, दूध आदि का अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिए । अधिक लम्बे समय तक इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

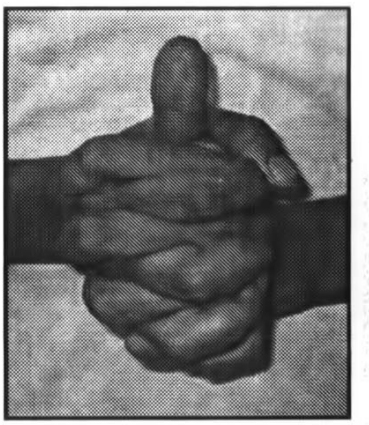

लाभ

1) इसके अभ्यास से शरीर का रूखापन नष्ट हो जाता है और चमड़ी चमकीली और मुलयाम हो जाती है ।

2) सर्दी–जुकाम, दमा–खाँसी, साइनस, लकवा तथा निम्न रक्तचाप में लाभ होता है।

3) यह मुद्रा कफ को सुखा देती है ।

इस तरह से हमने देखा की किस बीमारी में किस मुद्रा का अभ्यास लाभप्रद है। आवश्यक नहीं है कि एक व्यक्ति एक ही समय में सभी मुद्राओं का अभ्यास करे, परन्तु रोगों के अनुसार इनका अभ्यास करना चाहिए। इनके अभ्यास के समय मन में कभी भी नकारात्मक विचार नहीं लाने चाहिए, परन्तु सदा सकारात्मक विचारों से युक्त रहकर और ईश्वर पर दृढ़ विश्वास जमाकर उससे भी शीघ्र आरोग्य की प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसा करने से शीघ्र और ज्यादा लाभ होगा ।इनके अभ्यास के समय ये भी सोचना चाहिए कि हमारे शरीर से सभी रोगाणु जा रहे है और आरोग्यकारी अणुओं का समावेश हो रहा है।इस प्रकार शीघ्र लाभ होगा ।

बन्ध - प्रकरण

प्राण–साधना या योग–साधना में जितना महत्व मुद्राओं का है, ठीक उतना ही महत्व बन्धों का भी है। मुख्य रूप से बन्ध तीन प्रकार के होते हैं। योगासन, प्राणायाम आदि विशिष्ट क्रियाओं के करते समय जिस भी अंश में शक्ति बाहर जाती है, उसे बाहर जाने से रोककर अन्दर ही बाँध देना "बन्ध" कहलाता है। इसके पश्चात् अन्दर रूकी हुई शक्ति को ऊर्ध्वमुखी किया जाता है। बन्ध का अर्थ ही है, बाँधना, रोकना आदि। प्राणायाम के लिए बन्धों का लगाना अति आवश्यक है। बिना बन्धों के प्राणायाम पूरा लाभ कदापि नहीं दे सकते । बिना बन्धों को लगाये प्राणायाम करना तो ऐसा ही है जैसा कि कोई किसान अपने खेते में पानी भरने का प्रयास कर रहा हो और दूसरी तरफ सारे बन्ध (मेढ) तोड़ रखे हों, तो आप ही बताइए कि क्या किसान खेत में पानी भर पायेगा । अर्थात कभी भी नहीं । ठीक इसी प्रकार बिना बन्धों को लगाये प्राणायाम आदि क्रियायें कभी पूरा लाभ नहीं दे सकतीं।

बन्धों के तीन प्रकार

1) जालन्धर बन्ध 2) उड्डीयान बन्ध 3) मूल बन्ध

1) जालन्धर बन्ध

विधि :–

1) पद्मासन या सिद्धासन पर बैठकर, दोनों हाथों को घुटने पर रखें ।
2) श्वास को पूरा अन्दर भर कर, पेट थोड़ा पीछे की ओर और छाती थोड़ी उठी हुई रहेगी ।
3) ठोडी (हनु) को कण्ठकूप में लगाकर, ठोड़ी से कण्ठकूप और छाती को दबायें तथा दृष्टि को भूमध्य की तरफ केन्द्रित करें ।
4) श्वास को यथाशक्ति बाहर ही रोकने का प्रयास करें ।

5) जब क्षमता से बाहर होने लगे तब गर्दन सीधी करके श्वास को बाहर निकाले। गर्दन में दो नाडियां विद्यमान हैं, जिनका काम हृदय से शुद्ध रक्त को मस्तिष्क तक पहुँचाना है, इसलिए यह ग्रीवा–धमनी (Carofid Sirrus) कहलाती है । जब इस पर दबाव डाला जाता है, तो इसका आवेग मस्तिष्क को जाता है और मूर्छा सी आ जाती है तथा कभी–कभी हृदय की गति भी कम हो जाती है ।

लाभ–

1) कण्ठ मधुर, सुरीला और आकर्षक हो जाता है संगीतकार, गायक आदि के लिए यह विशेष लाभकारी है अथवा जो उस क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं, उनके लिए भी लाभकारी रहेगा ।

2) कण्ठ के संकोच से इडा, पिंगला नाडियों के बन्द हो जाने पर प्राण सुषुम्ना नाडी में प्रवेश पाता है, जिसके यौगिक लाभ अनेक हैं ।

3) गले के सभी रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है । थाइराइड, टॉंसिल आदि रोगों में भी अभ्यासनीय है ।

4) विशुद्धि चक्र जागृत करता है।

2) उड्डीयान बन्ध :

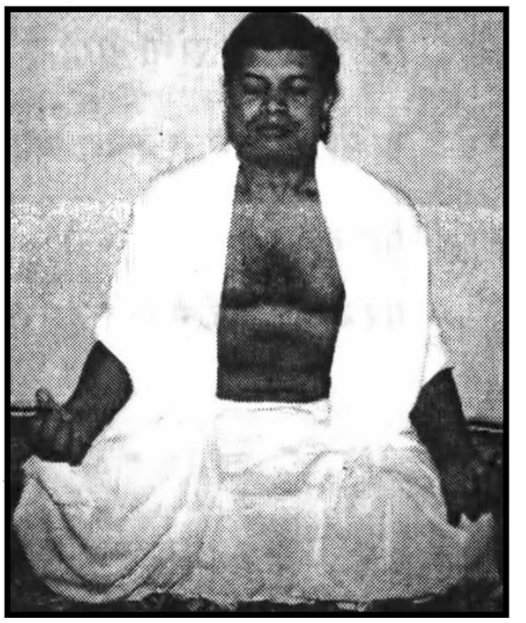

जिस क्रिया के द्वारा प्राण उठकर सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाये उसे उड्डीयान बन्ध कहते हैं । इस बन्ध के अभ्यास से हृदय पर अत्यधिक दबाव पड़ता है, इसलिए हृदयरोगियों को अथवा दुर्बल हृदय वालों को इसका अभ्यास कभी भी नहीं करना चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति भी इसका अभ्यास एक हद में रहकर ही करें ।

विधि :–

1) खड़े होकर दोनों हाथों को सहजभाव से दोनों घुटनों पर रखिये, दोनों पैरों में डेढ फुट का अन्तर होना चाहिए ।

2) श्वास को बाहर निकालकर पेट को ढीला छोड़ दीजिए ।

3) छाती को थोड़ा ऊपर और पेट को कमर से लगा दीजिए।

4) प्रारम्भ में तीन बार ही करना चाहिए पर धीरे–धीरे सामर्थ्य के अनुसार इसका अभ्यास बढ़ा भी सकते हैं ।

श्वास को बाहर निकालने के पश्चात् और निकालने के समय इसको लगाया जाता है।इसमें Diaphragum ऊपर उठाकर दोनों फेफड़ों के निचले भाग को दबाती है ।

अनेक प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि उड्डीयानबन्ध के अन्धानेत्र (Cecum) आरोही आँत (Accending Colon) एवं मलाशय (Sigmoid) ऊपर की तरफ आकर्षित होता है, और उनमें स्थित मल अनुप्रस्थ आँत (Transerver Colon) में एकत्र हो जाता है। उड्डीयानबन्ध करते समय अन्धान्त्र में स्थित मल अपना स्थान छोड़कर अनुप्रस्थ आँत में चला जाता है।जिसके परिणामस्वरूप कब्ज का निवारण हो जाता है।

लाभ–

1) पेट सम्बन्धी सभी रोगों को दूर करता है।

2) प्राणों को जागृत करके मणिपुर चक्र का शोधन करता है।

3) पेट के सभी अंगों जैसे – यकृत, प्लीहा, अग्नाशय, गुर्दे, मूत्राशय, आँतें, आदि पर दबाव पड़ता है, जिससे उनकी कार्य–क्षमता बढ़ती है ।

3) मूल–बन्ध :

विधि :–

1) सिद्धासन या पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें ।

2) बाह्य या आभ्यन्तर कुम्भक करते हुए गुदाभाग (Anus) एवं मूत्रेन्द्रिय को ऊपर की तरफ आकर्षित करें, खींचे। इनमें नाभी के नीचे वाला भाग भी खिंच जायेगा ।

3) वैसे बाह्य कुम्भक के साथ इसका अभ्यास करना ज्यादा सहज है। परन्तु योगाभ्यासी लोग सहज रूप से भी इसको लगाये रहते हैं।

4) दीर्घकालीन अभ्यास किसी अनुभवी व्यक्ति के सानिध्य में करना चाहिए ।

लाभ :–

1) वीर्य को ऊर्ध्वरेतस् बनाता है, अतः ब्रहमचर्य के लिए यह बंध अत्यन्त – महत्वपूर्ण है ।

2) कोष्ठबद्धता (Constipation) दूर करने, जठराग्नि को तेज करने और बवासीर के लिए यह बन्ध अत्युत्तम है ।

3) इससे अपान–वायु ऊर्ध्वगमन को प्राप्त करके प्राण के साथ एकता को प्राप्त करता है। इस प्रकार मूलाधार को जागृत कर कुण्डलिनी जागरण में अत्यन्त सहायक होता है ।

4) पेट के सभी अंगों जैसे – यकृत, प्लीहा, अग्नाशय, गुर्दे, मूत्राशय, आँतें, आदि पर दबाव पड़ता है, जिससे उनकी कार्य–क्षमता बढ़ती है ।

महाबन्ध :–

यह कोई अलग बन्ध नहीं है अपितु तीनों बन्धों का एक ही साथ अभ्यास करना ही महाबन्ध कहलाता है। पद्मासन, सुखासन या ध्यानयोग्य किसी भी आसन पर बैठकर इसका अभ्यास किया जा सकता है। उसके अभ्यास से उपर्युक्त तीनों बन्धों का लाभ मिलता जाता है। तीनों का एक साथ अभ्यास केवल बाह्य–कुम्भक में ही सम्भव है।

लाभ :–

1) प्राणी ऊर्ध्वगामी और बलवान् बन जाता है ।

2) वीर्य की शुद्धि और बल में अप्रत्याशित वृद्धि होती है ।

3) महाबन्ध के निरन्तर अभ्यास से इडा, पिंगला और सुषुम का संगम प्राप्त हो जाता है, जिससे यौगिक अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं।

प्राणायाम

प्राणायाम की महत्ताः-

प्राणायाम योगशास्त्रों में ऐसा स्थान रखता है, जैसा आकाशमण्डल में सूर्य का स्थान है । यह एक अत्यन्त लाभकारी और मूल्यवान क्रिया है। चाहे गंभीर योगसाधक हो या प्रांरभिक योगाभ्यासी, शारीरिक रूप से अत्यन्त भीषण रोगों से त्रस्त हो या सदा स्वस्थ और नीरोग रहने का इच्छुक व्यक्ति दोनों के लिए ही अत्यन्त लाभकारी है। कोई मानसिक स्वास्थ्य का इच्छुक हो या शारीरिक या बौद्धिक स्वास्थ्य का, बालक हो या वृद्ध युवा हो या प्रौढ़, स्त्री हो या पुरूष, बुद्धिजीवी हो या श्रमजीवी सबके लिए यह आवश्यक और महत्वपूर्ण है ।

अन्नादि के समान औषधियाँ भी प्रकृति की देन है। अन्न देहपुष्टि के लिए आवश्यक और उपयुक्त होता है तो औषधियाँ शरीर के दोषों और रोगों की निवृत्ति के लिए प्रयुक्त होती हैं, परन्तु इन प्रचलित औषधियों से रोग समूल नष्ट नहीं होते । विशेषतः पाश्चात्य या अंग्रेजी दवाईयों के सेवन से ये रोग कुछ समय के लिए तो दब जाते हैं किन्तु इनसे भी समूल उन्मूलन नहीं होता, पुनः रोग प्रकट होते रहते हैं। अतः तत्वदर्शी महार्षियों द्वारा स्वानुभूति के आधार पर आविष्कृत, रोगों को समूल नष्ट करके स्वास्थ्य को स्थिर रखने वाले सफल साधन प्राणायाम को अपनाने की आवश्यकता है। मानवजीवन यात्रा के अन्य साधनों में प्राणवायु का महत्व सबसे अधिक है। क्योंकि अन्न–जलादि के बिना कुछ काल तक जीवन चल सकता है, परन्तु वायु के बिना तो कुछ मिनट भी नहीं बीत सकते । प्राणायाम के द्वारा श्वसन तन्त्र को सक्रिय, बलवान् और प्रशिक्षित किया जाता है। वह और भी अधिक कार्यक्षमता से कार्य करने में समर्थ होता है। इससे सम्पूर्ण दिन सम्यक् श्वसन चलता रहता है, जिससे शरीर की सभी प्रणालियां सामंजस्य पूर्वक समुचित रीति से काम कर रहीं होती है । प्राणायाम से जहाँ श्वसन–तन्त्र सम्यक् कार्य करता है, वहाँ साथ ही पाचन तन्त्र, अवशोषण तन्त्र, मल–निकासन तन्त्र, रक्त–संचारण तन्त्र, अन्तः स्रावी तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र आदि महत्वपूर्ण तन्त्र भी सक्रिय व सम्यक् होने से शरीर आहार व अवशोषण के सत्यक् होने से शरीर आहार में से पर्याप्त

पोषण ग्रहण कर पाता है और रस–रक्त–मांस–अस्थि आदि सब धातुएँ पुष्ट होती हैं, वहाँ मल–निष्कासन के समयक् होने से सम्पूर्ण शरीर निरोग बनता है ।

प्राणायाम का आध्यात्मिक मूल्य भी काफी ऊँचा है। प्राणायाम के अनेक प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं। योग के सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ योगदर्शन में योगमार्ग के सबसे बड़े बाधक अज्ञान–अविवेक का समूल नाश प्राणायाम से ही माना है । आध्यात्मिक प्रगति के एक मुख्य साधन धारणा लगाने की मानसिक क्षमता प्राणायाम से बढ़ती है ऐसा प्रतिपादित किया गया है ।

योगदर्शन के द्वितीय पाद के 52 वें सूत्र के व्यासभाष्य में कहा गया है कि – प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आध्यात्मिक साधना में या प्रगति में इसकी कितनी महत्ता और आवश्यकता है। महर्षि मनु महाराज ने भी कहा है कि जैसे अग्नि में तपाने से सोना आदि धातुओं का मैल नष्ट हो जाता है ठीक वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के सभी दोष नष्ट हा जाते हैं" (मनुस्मृति 6.71)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी कहा है कि "इन (प्राणायामों) का अनुष्ठान इसलिए है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे"। पुनश्च ऋग्वेदादिभाष्य – भूमिका में लिखा है कि "इस प्रकार प्राणायाम पूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान का ढ़कने वाला आवरण जो अज्ञान है, वह नित्यप्रति नष्ट होता चला जाता है।"

प्राणायाम के लाभ :–

अज्ञानता का नाश – प्राणायाम का सबसे बड़ा लाभ यह है कि हमारे अन्दर जो अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है, वह नष्ट हो जाता है अर्थात् हमारे शरीर आत्मा, मन और आत्मा के वास्तविक स्वरूप पर जो बीमारियाँ, निर्बलता, और अविद्या का जो पर्दा पड़ा हुआ है, वह नष्ट हो जाता है। हमारा शरीर में मन और आत्मा स्वस्थ, पवित्र, बलवान् तथा सम्पूर्ण शक्तियों का भण्डार बन जाती है। अत: योगदर्शनकार ने कहा है –
तत:क्षीयते प्रकाशावरणम् (यो.द. 2.52)

बल–पुष्टिवर्धक :–

प्राणायाम से शरीर के अंग पुष्ट और बलवान् हो जाते हैं, बल इतना अधिक आ

जाता है कि वह चलती हुई मोटरगाडियों को भी रोक सकता है। जंजीरों को तोड़ सकता है। विश्वविख्यात् पहलवान् प्रो. राममूर्ति आदि भारतीयों ने प्राणायाम के बल पर अनेक चमत्कार दिखाये हैं। अतः उपनिषदों में ठीक ही कहा है कि **"प्राणों के बल त्तप्राणें प्रतिष्ठितम्"**

अन्यत्र भी कहा है कि –

प्राणायाम पुष्टिर्गात्रस्य बुद्धिर्तेजो यशेबलम् ।

प्रबर्धन्ते हि मनुष्यस्थ तत्मात् प्राणायाममाचरेत्

अर्थात् प्राणायाम के सतत अभ्यास से अंगों की पुष्टता, बुद्धि, तेज, यश और बल की वृद्धि होती है ।

असाध्य–रोग–निवारक :–

प्राणायाम के अभ्यास से टी.बी., निमोनिया, दमा, चर्मरोग, रक्तचाप, हृदय–रोग आदि असाध्य रोग भी समूल नष्ट हो जाते हैं। हम जो सामन्यतः सांस लेते हैं वह फेफड़ों के सब भागों में नहीं पहुँच पाती है। हमारे फेफड़ों के मुख्यतः तीन भाग हैं :–

1) एक ऊपर जो कि गर्दन तक (2) दूसरा हृदय के दोनों और (3) तीसरा नीचे का आवरण डायाफ्राम है। इनमे से किसी भी भाग में श्वास ठीक से नहीं पहुँचता है तो वह भाग रोगयुक्त और निष्क्रिय हो जाता है। जिसके फलस्वरूप फेफड़ों से सम्बन्धित रोग जैसे दमा, खाँसी, टी.वी. तथा निमोनिया आदि रोगों की निरन्तर सम्भावना बनी रहती है। इतना ही नहीं बल्कि उस भाग के खराब हो जाने पर बह रक्त को ठीक प्रकार से शुद्ध नहीं कर पाता है। अतः दूषित अवस्था में ही रक्त वापस फेफड़ों से हृदय और हृदय से हमारे सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। जिससे कुष्ठ रोग, चर्मरोग, फोडे–फुन्सी आदि की सम्भावना सदा बनी रहती है ।

परन्तु प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास करने से उपर्युक्त रोगों की सम्भावना बिल्कुल समाप्त हो जाती है ।

मल – निष्कासन –

प्राणायाम का अभ्यास करने से जितने भी तरह के मल शरीर के अन्दर है वे स्वतः

ही बाहर निकलकर शरीर को शुद्ध और पवित्र बनाने में सक्षम होते हैं । मल को बाहर निकालने के अंगों में बड़ी एवं छोटी आँत, किडनी और फेफड़ें है। साधारण तौर पर श्वास लेने पर उदर की माँसपेशियाँ क्रमशः ऊपर–नीचे की ओर जाती हैं, जिससे आँतों किडनी आदि की हल्की–हल्की मालिश होती है । परन्तु प्राणायाम करने से अच्छी प्रकार से होने लगती है, जिसके कारण मल बाहर ठीक तरह से निकलता है। फेफड़े बार–बार सिकुड़ते है और फैलते है, जिससे वे शक्ति सम्पन्न होकर कार्बन–डाई–आक्साईड को ठीक से बाहर निकालते हैं। प्राणायाम का आमाशय, पेनक्रियाज, लीवर आदि अंगों पर भी समुचित प्रभाव पड़ता है। जिसके कारण वे शक्ति सम्पन्न होकर उनमें उष्णता बढ़कर जठराग्नि को प्रबल करने में कारक बनती है ।

जिस प्रकार एक स्थान में एकत्रित वायु को सामान्य चलती हवा से शुद्ध करना सम्भव नहीं है, अपितु आंधी की जरूरत पड़ती है, ठीक इसी प्रकार प्राणायाम करने से प्राण लेने की जो आंधी आती है, उससे शरीर का मल बाहर निकल जाता है कहा भी गया है कि–

प्राणायामैरेव सर्वे प्रयुष्यति मला इति।
आचार्याणा तु केषाञ्चिदन्यत्कम्र न सम्मतम् ।। (हुध्योग प्रदीपिका)

अर्थात् प्राणायाम से शरीर से सारे मल नष्ट हो जाते हैं। मल नष्ट करने का प्राणायाम ही साधन है, ऐसा अनेक आचार्यो का मत है ।

अन्यत्र भी कहा गया है –

दक्ष्यन्ते ध्मायमानाना धातूनां च यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दहयन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।। (मनु. 6/71)

आयुवर्द्धक–

हमारी आयु अपने श्वासों पर निर्भर है। हमारे श्वास जितने कम होंगे अपनी ही आयु की वृद्धि हेगी। यदि काम, क्रोध आदि से युक्त रहेंगे तो तेजी से श्वास लेंगे जिसके फलस्वरूप आयु कम होगी। यदि मन प्रत्येक स्थिति में शान्त रहेगा, तो श्वास स्वतः कम होकर आयु की वृद्धि करेंगे । जैसे कछुआ एक मिनट में 5 श्वास ही लेता है । अतः उसकी आयु 150 वर्ष है, और इसके विपरीत खरगोश एक मिनट में 38 श्वास निकलता है, उसकी आयु प्रायः औसतन 8 वर्ष की है ।

प्राणायाम के अभ्यास से श्वास सूक्ष्म हो जाते हैं जिसके कारण धीरे–धीरे लेते है और धीरे–धीरे कम भी हो जाते हैं जिसके कारण आयु की वृद्धि होती है ।

मानसिक शक्तियों का विकास

प्राणायाम करने से मानसिक शक्तियों का भी विकास होता है। यह मनुष्य संसार के सारे जन्मों में श्रेष्ठ और दुर्लभ बताया जाता है। इसीलिए इसे शास्त्रों की ब्रह्मपुरी, देवभूमि और ऋषिभूमि कहा है । इसी शरीर में आठ चक्र और नवद्वार हैं। चक्र वस्तुतः ज्ञान तन्तुओं के केन्द्र है। इन चक्रों में मानसिक एवं दैवी शक्तियाँ निहित हैं जो कि इन चक्रो को जाग्रत करने की मुख्य साधना प्राणायाम है। प्राणायाम से जिस चक्र को जगाना चाहे जगा सकते हैं फलतः साधक अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेता हैं ।

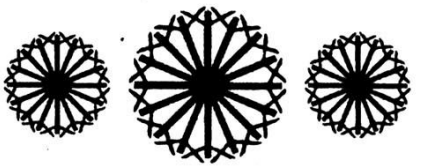

शरीर में अष्टचक्र और नवद्वार

अर्थर्ववेद में मानव–शरीर और उसमें विद्यमान जीवात्मा के सम्बन्ध में एक मन्त्र आया है–

अष्टाचक्रा नवद्वार देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्यय: कोश: स्वर्गी ज्योतिषाव्रत: ।।

(अथर्ववेद 1012131)

अर्थ – (**अष्टाचक्रा**) आठ चक्रों और (**नवद्वारा**) नौ द्वारोंवाली ।(देवानाम्) विद्वानों की (पू:) पुरी=देह (**अयोध्या**) अजेय है।(**तस्याम्**) उस देह रूपी पुरी में (**हिरण्यय:**) अनेक बलों से युक्त (**कोश:**) कोश् [चेतन जीवात्मा] (**स्वर्ग:**) सुख–सुखरूप परमात्मा की ओर चलनेवाला तथा (**ज्योतिषा**) [स्वप्रकाशस्वरूप ब्रह्म] से (**आवृत:**) छाया हुआ है।

(अ) अष्टचक्र

प्रथम मान्यता :–

इस मन्त्र में प्रयुक्त अष्ठ चक्रों के सम्बन्ध में हठयोग के विद्वानों की मान्यता है कि मानव –शरीर में निम्नलिखित आठ चक्र होते हैं:–

1. मूलाधारचक्र 2.स्वाधिष्ठानचक्र 3.सूर्यचक्र 4.मणिपूरकचक्र
4. अनाहतचक्र 5.विशुद्धिचक्र 7.आज्ञाचक्र 8.सहस्त्रार चक्र

हठयोग की मान्यतानुसार इन अष्टचक्रकों का विश्लेषण इस प्रकार है :–

मानव शरीर के सभी अंग–प्रत्यंग को मस्तिष्क सञ्चालित करता है। नाड़िया मस्तिष्क का सन्देश सभी अंगों को तथा सभी अंगों का सन्देश मस्तिष्क को देती है। ये नड़ियां मस्तिष्क से चलकर रीढ़ की हड्डी के अन्त तक गई हैं ।

रीढ़ की हड्डी की सम्पूर्ण लम्बाई वाले भाग में स्थित इन नाड़ियों में से अनेक स्थलों पर अनेक सुक्ष्मादिसूक्ष्म नाडियाँ निकलकर शरीर के विभिन्न अंगों तक जाती हैं। इन अलग–अलग स्थानों को ही चक्र माना जा सकता है ।

शरीर–रचना–विज्ञान के आधार पर हठयोग में वर्णित अष्टचक्रों (आठ स्थानों) को इस प्रकार समझा जा सकता है:–

1. **मूलाधारचक्र :–** यह चक्र या स्थान गुदामूल से लगभग दो अंगुल ऊपर स्थित है, जो रीढ़ की हड्डी का अन्तिम भाग है। यहाँ से निकलनेवाली सूक्ष्म नाड़ियाँ मलाशय, आदि अंगों को नियन्त्रित करती हैं । इस स्थान के स्वस्थ रहने पर ही मलाशय आदि अंग स्वस्थ रहते हैं ।
2. **स्वाधिष्ठानचक्र :–** रीढ़ की हड्डी के अन्तिम भाग से लेकर दो अगुल ऊपर (पेडू की सीध में) का स्थान ही स्वाधिष्ठान–चक्र है। यहीं से अनेक नाड़ियाँ निकलकर वृक्क (गुर्दे), मूत्राशय, गर्भाशय, डिम्बग्रन्थियों, शिश्न–अण्डकोश, आदि तक जाती हैं। इस स्थान के स्वस्थ रहने पर ही ये सभी अंग स्वस्थ रहते हैं ।
3. **सूर्यचक्र :–** यह नाभि की सीध के समीपस्थ–आमाशय, पक्वाशय, छोटी–बड़ी आँत आदि सभी अंगों तथा सम्पूर्ण पाचनसंस्थान तक जाती हैं ।
4. **मणिपूरकचक्र :–** यह चक्र नाभि से लगभग छह अगुल ऊपर स्थित है। इसी स्थान से अनेक नाड़ियां निकलकर–यकृत्, प्लीहा, अग्नाशय, पक्वाशय तक जाती हैं तथा उन्हें नियन्त्रित करती हैं। इस स्थान के स्वस्थ रहने पर ही ये सभी अंग स्वस्थ रहते हैं।
5. **अनाहतचक्र :–** यह चक्र हृदय के समीप स्थित है। यहाँ से अनेक नाड़ियाँ निकलकर हृदय तक जातीं हैं तथा उसे नियन्त्रित करती हैं। इस स्थान के स्वस्थ रहने से हृदय स्वस्थ रहता है।
6. **विशुद्धिचक्र :–** यह चक्र कण्ठ की सीध में स्थित है। इस स्थान से अनेक सूक्ष्म, नाडियाँ, निकलकर कण्ठ, जिह्वा, स्वरतन्त्र, फेफड़ों आदि अंगों तक जाती है। इस स्थान के स्वस्थ रहने से ये अभी अंग स्वस्थ रहते हैं ।
7. **आज्ञाचक्र :–** यह चक्र दोनों भौंहो के मध्य की सीध में स्थित है। यहाँ से अनेक सुक्ष्म नाड़ियाँ निकलकर नेत्रों, कानों, मुख, दाँतों आदि अंगों तक जाती हैं। इस स्थान के स्वस्थ रहने पर ये सभी अंग स्वस्थ रहते हैं ।
8. **सहस्त्राचरचक्र :–** यह स्थान मस्तिष्क के मध्य में स्थित है। यहीं से अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियाँ सम्पूर्ण शिरोभाग में फैली हुई हैं । इसी भाग में शरीर के सभी अंगों के मुख्य नियन्त्रण–केन्द्र स्थित हैं। मस्तिष्क के इस भाग (सहस्त्रारचक्र) के स्वस्थ रहने पर मस्तिष्क, मन, बुद्धि तथा शरीर के सभी अंग

भलीभांति कार्य करते हैं। मस्तिष्क में ही जीवात्मा का निवास स्थान है ।

ईश्वर–उपासना करने वाले उपासक योग–साधना करते हुए समाधि की अवस्था में पहुँचकर इसी स्थान पर आत्मा और परमात्मा के दर्शन करते हैं। इस स्थान पर ही ब्रह्मरन्ध्र स्थित है ।

एक मिथ्या कल्पना

इन चक्रों के सम्बन्ध में हठयोग के विद्वान् मानते हैं कि चक्रों में विशेष प्रकार का प्रकाश विद्यमान है तथा इन अंगों के जाग्रत् हो जाने पर विशेष प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे–जल पर चलना, आकाश में उड़ना, शरीर को अदृश्य करना, जीवात्मा को अपने शरीर से बाहर निकालकर दूसरों के शरीर में प्रवेश करना, आदि ।

इस प्रकार की सभी मान्यताएँ पूर्णतः काल्पनिक, निरर्थक और अवैज्ञानिक हैं। संसार में आज तक कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ, जिसने इन चक्रों को जाग्रत कर के कोई अद्‌भुत सिद्धि प्राप्त की हो। इन चक्रों में विशेष प्रकार का प्रकाश या सिद्धि मानने वालों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे अपनी ऐसी सिद्धि को वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध करके दिखाएँ ।

द्वितीय मान्यता :–

अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र में प्रयुक्त अष्टचक्रों के संबंध में दूसरा मत है कि मानव द्वारा योग के आठ अंगों का पालन करना ही अष्टचक्रों को पार करना है। योग के आठ अंग इस प्रकार हैं:–

1. यम	2. नियम	3. आसन	4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार	6. धारणा	7. ध्यान	8. समाधि

तृतीय मान्यता :–

अष्टचक्रों के सम्बन्ध में तृतीय मान्यता इस प्रकार है:–

कुछ लोग वैदिक शब्द – 'भू', 'भुवः', 'स्वः', 'महः', 'जनः', 'तपः', और 'सत्यम्' को उपर्युक्त अष्टचक्रों के प्रतीक मानते हैं। मेरा स्पष्ट मत है कि यह उनकी कपोल–कल्पना है। वैदिक साहित्य में इन सात शब्दों का आठ चक्रों से किसी प्रकार का कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है।

आचार्य जी की मान्यता :–

अष्टचक्रों के सम्बन्ध में चतुर्थ और मेरी मान्यता यह है कि मानव–शरीर में आठ जोड़ हैं, जो चक्र की भाँति घुमते हैं। ये आठ जोड़ ही अष्टचक्र हैं, जो इस प्रकार हैं:–

1. पैरों के जोड़ 2. घुटनों के जोड़ 3. जाघओं के जोड़ 4. नाभि का जोड़
5. हाथों के जोड़ 6. कुहनियाँ के जोड़ 7. कण्ठ का जोड़ 8 शिर को जोड़

अष्टचक्रों की जागृति क्या है ?

वर्तमान में अनेक लेखक प्राणायाम और योगासनों की अपनी पुस्तकें में प्राणायाम और योगासनों द्वारा उपर्युक्त अष्टचक्रों के जाग्रत् होने की बात लिखते और कहते हैं, कि इन चक्रों में कहीं तो दिव्य प्रकाश है और कहीं घोर अन्धकार है। वे यह भी कहते हैं। कि प्राणायाम और योगासनों द्वारा ये अष्टचक्र प्रकाशित हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप साधक के शरीर पर अलौकिक तेज छा जाता है और उसे अलौकिक बुद्धि प्राप्त हो जाती है।

अथार्थ तो यह है कि ये सभी बातें असत्य और भ्रान्ति फैलने वाली हैं । अथर्ववेद (10!2!29) के अनुसार केवल जीवात्मा ही परमेश्वर के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित है।

यह जीवात्मा भी इसलिए प्रकाशित है, क्योंकि वह चेतन है, जबकि शरीर के समस्त अंग तो जड़ हैं। उनमें अपना कोई नहीं है।

सत्य केवल यह है कि प्राणायाम या योगासनों द्वारा इड़ा–पिंगला और सुषुम्णा नाड़ियों के किसी भी स्थान पर कोई प्रकाश नहीं होता । अतः अष्टचक्रों की जागृति की मान्यता भ्रामक है।

प्राणायाम और योगासन द्वारा ये नाड़ियाँ नीचे से ऊपर तक स्वस्थ हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ हो जाता है। प्राणायाम एवं योगासन करने से रीढ़ की हड्डी के साथ–साथ स्थित सुषुम्णा और इड़ा–पिंगला नाड़ियों के उपर्युक्त अष्टचक्रों (स्थानों) पर वायु का दबाव पड़ने से उनमें रक्त एवं वायु का सञ्चार बढ़ जाता है और इन स्थानों से निकलने वाली सूक्ष्म नाड़ियाँ पहले से अधिक स्वस्थ और सक्रिय हो उठती है, जिसके फलस्वरूप उनसे सम्बद्ध अंग–प्रत्यंग भी पहले से अधिक स्वस्थ और सक्रिय हो जाते हैं। इस प्रकार प्राणायाम एवं योगासन करने से मनुष्य स्वस्थ और सुन्दर बन जाता है।

(अ) नवद्वार

मानव–शरीर में नौ द्वार इस प्रकार हैं:–

2 नेत्रद्वार + 2 नासिकाद्वार+2 कर्णद्वार + 1 मुखद्वार + 1 मलद्वार + 1 मूत्रद्वार = 9 द्वार ।

विधिवत् प्राणायाम करने से मानव–शरीर के ये सभी द्वार स्वस्थ हो जाते हैं और नित्यप्रति प्राणायाम करने से इन सभी द्वारों में कोई रोग नहीं रहता और न भविष्य में होता है ।

इन नौ द्वारों के स्वस्थ रहने से ही हमारा सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ रहता है और इनके अस्वस्थ हो जाने पर हमारा शरीर अस्वस्थ हो जाता है जैसे:–

1. नेत्रों के स्वस्थ रहने पर ही हम भलीभांति देख सकते हैं ।
2. कानों के स्वस्थ रहने पर ही हम भलीभांति सुन सकते हैं।
3. नासिका के स्वस्थ रहने पर ही हम भलीभांति श्वास ले और छोड़ सकते हैं।
4. मुख के स्वस्थ रहने पर ही हम भलीभांति वार्तालाप कर सकते हैं तथा भोजन ग्रहण कर सकते हैं ।
5. मलद्वार के स्वस्थ रहने पर ही भलीभांति मल–विर्सजन हो सकता है और तभी हम स्वस्थ रह सकते हैं ।
6. मुत्रद्वार के स्वस्थ रहने पर ही मुत्रद्वार का भलीभांति विसर्जन हो सकता है और तभी हम स्वस्थ रह सकते हैं ।

इस प्रकार मानव–शरीर के इन नवद्वारों का पूर्ण स्वस्थ रहना अनिवार्य है और इन सभी द्वारों को पूर्ण स्वस्थ रखने का सरलतम और सर्वोत्तम उपाय केवल प्राणायाम है।

अष्टचक्रों की जागृति क्या है ?

वैदिक वाड्मय में मानव के व्यष्टि--शरीर के तीन भेद हैं:–

1. स्थूलशरीर, 2. सूक्ष्मशरीर और 3. कारणशरीर। ये तीन शरीर ही तीन आवरण हैं ।

इन तीनों शरीरों के पाँच कोश माने गए हैं, जो इस प्रकार हैं:–

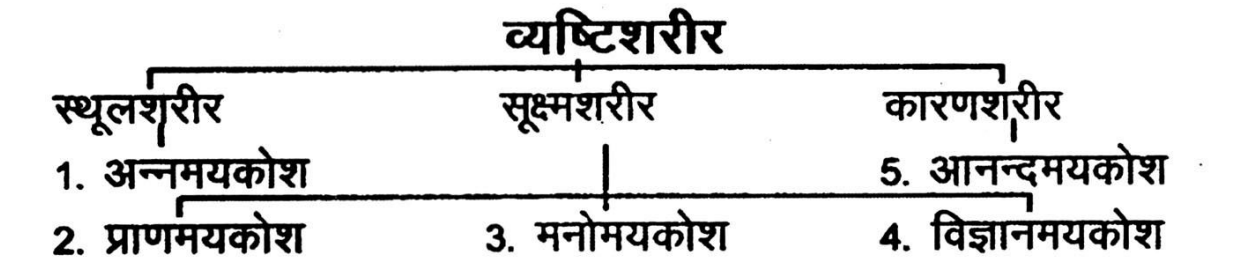

मानव शरीर मे विद्यमान इन पञ्चकोशों एवं उनकी शुद्धि का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है:–

1. अन्नमयकोश

'अन्नमय' का अर्थ है – अन्न से बना हुआ । अन्न पाँच महाभूतों या पाँच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बनता है। अतः जो कोश अन्न से बना हुआ है उसे अन्नमयकोश है। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (हस्त, पाद, वाक्, आयु, उपस्थ) शरीर के अन्य सभी अंग–प्रत्यंग, त्वचा, नाड़ियाँ, रुधिर, मज्जा, अस्थि, शुक्र आदि सभी अन्नमयकोश के अन्तर्गत आते हैं ।

अन्नमयकोश की शुद्धि का मुख्य साधन है – शौच अर्थात् आहार–विहार की शुचिता, आसन की सिद्धि, ब्रह्मचर्य, तप और प्राणायाम के अभ्यास करने से अन्नमयकोश शुद्ध हो जाता है ।

2. प्राणामयकोश

प्राणामयकोश का अर्थ है – प्राण से बना हुआ । अतः जो कोश प्राणतत्व से बना है, उसे प्राणामयकोश कहते हैं ।

स्थूलशरीर का अर्थ सूक्ष्मशरीर होता है। स्थूलशरीर के अन्दर एक ओर शरीर है, जिसे प्राणामयकोश कहते हैं। यह प्राणमय कोश – पाँच मुख्य प्राणों (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान) और पाँच गौण प्राणों (नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय) से बना हुआ है ।

प्राणों के नियमित रहने से ही स्थूलशरीर स्वस्थ रहता है। प्राण के मुख्य कार्य हैं – आहार का यथोचित पाचन करना, रसों का पहुँचाना तथा समस्त अंगों में उत्पन्न मल को निष्कासित करना। यह प्राणायामकोश ही भूख–प्यास का अनुभव तथा विषयों के सुख–दुःख का भोग भी कराता है ।

प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से प्राणामयकोश शुद्ध एव सशक्त हो जाता है। प्राण ही जीवन–साधन है और प्राण ही आयु है। अतः प्राणायाम की साधना करने वाला मनुष्य उत्तम स्वास्थ्य और सुखी जीवन प्राप्त कर लेता है।

3. मनोमयकोश

मनोमय का अर्थ है – 'मनस–तत्त्व' से बना हुआ । अतः जो कोश 'मनस–तत्व' से बना हुआ है, उसे मनोमय कोश कहते हैं ।

सूक्ष्मशरीर के प्राणामयकोश के अन्दर और उससे पृथक् एक ओर कोश रहता है, जिसे मनो मयकोश कहा जाता है। मनोमयकोश के अन्दर मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार विद्यमान रहते हैं। इन चारों को ही अन्तः कारण चतुष्टय कहते हैं। इनके साथ–साथ पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, हस्त, पाद, आयु और उपस्थ) भी वहीं रहते हैं ।

"शरीर में सर्वत्र विद्यमान मन की शक्ति ही मनोमयकोश है।"

यह मन वायु के समान वेगवान् शीघ्रगामी और शरीर में सर्वव्यापी होता है। जिस प्रकार वायु को नियन्त्रित करना कठिन है, उसी प्रकार मन को वश में करना भी बहुत कठिन होता हैं ।

जो मनुष्य योग के पाठ अंगों का ज्ञानकर, उन्हें अपने जीवन में उतार लेता है, प्रातः सायं एक निराकार परमेश्वर की उपासना करता है, वेद तथा वेदानुकूल ग्रन्थों का स्वाध्याय करता है, धर्मात्मा और वैदिक विद्वानों के साथ सत्संग करता है, संसार के प्रति वैराग्य बढ़ाता है, वही मनुष्य अपने मन को भलीभाँति वश में कर पाता है, अन्य कोई नहीं।

इसमें से भी प्राणायाम मनोनिग्रह का मुख्य साधन है। प्राणायाम द्वारा मनुष्य का मन परमेश्वर में युक्त हो जाता है तथा उसे मोक्षानन्द की प्राप्ति होती है।

नित्यप्रति प्राणायाम के नियमित अभ्यास द्वारा पाँचों प्राण साधक के वश में हो जाते हैं उसके प्राणों की गति नियमित हो जाती है तथा उसकी इन्द्रियों और उसके मन की पापवृत्तियों का नाश हो जाता है। यही मनोमयकोश की शुद्धि कहलाती है।

4. विज्ञानमयकोश

'विज्ञानमय' का अर्थ है – विज्ञान (बुद्धि) तत्त्व से बना हुआ । अतः जो कोश 'विज्ञानतत्त्व' से बना हुआ है, उसे विज्ञानमयकोश कहते हैं ।

सूक्ष्मशरीर के मनोमयकोश के अन्दर एक ओर कोश रहता है, जिसे विज्ञानमयकोश कहा जाता हे। मनोमयकोश विज्ञानप्रधान बुद्धि से युक्त रहता है। मन जो भाग मस्तिष्क में स्थित होकर कार्य करता है, उसे विज्ञानमयकोश कहते है। प्रज्ञान का अर्थ है– बुद्धि अतः विज्ञानमयकोश का अर्थ है – बुद्धिमयकोश।

मनोमयकोश की साधना करने के पश्चात् साधक के मन की पवित्रता, एकाग्रता, सुख, सन्तोष और शान्ति के साथ–साथ पवित्र बुद्धि भी प्राप्त होती है। इस पवित्र बुद्धि द्वारा साधक अपने सभी कर्म पवित्रता और सावधानीपूर्वक करता है, जिससे उसके सभी कर्म–सफल होते जाते हैं, अतः जीवन में सुख–शांति और सफलता के लिए बुद्धि का पवित्र होना परमावश्यक है।

विज्ञानमयकोश के अंग हैं–श्रद्धा (सत्य में धारणा और ईश्वर में विश्वास), ऋत्, सत्य, योग और तेज ।इस प्रकार पवित्र बुद्धि से युक्त चैतन्य आत्मा में ही ऋत्, सत्य, योग और तेज का सञ्चार होता है।

इस विज्ञानमयकोश को शुद्ध करने के उपाय हैं – आलस्य का त्याग, सात्त्विक भोजन, प्राणायाम, मन की एकाग्रता, सत्य, श्रद्धा और योग–साधना ।

5. आनन्दमयकोश

आनन्दमय का अर्थ है – आनन्द से बना हुआ। सत्त्व, रज और तम की साम्यावस्था ही 'आनन्द' तत्व है। अतः आनन्दतत्त्व से बने कोश को ही आनन्दमयकोश कहते हैं। जीव के कारणशरीर में आनन्दमयकोश विद्यमान है। यह आनन्दमयकोश मनुष्य के हृदय (मस्तिष्क) में रहता है। इस कोश को हिरण्मय, हृत्कमल, हत्पुण्डरीक, हृदयगुहा, हृदयाकोश, ब्रह्मपुर, आदि भी कहा गया हैं।

विज्ञानामयकोश में इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि द्वारा ज्ञान–प्राप्ति होती है। जब मनुष्य जीव, जगत् और ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करके, निर्मल होकर परमेश्वर की उपासना करता हुआ, अपने स्वरूप को जान लेता है अर्थात् आत्म–साक्षात्कार कर लेता है, तब उसके मन में हर्ष की विशेष अनुभूति होती है। यह विशेष हर्षानुभुति ही आनन्द है। हृदयस्थकोश ही विशेष आनन्दानुभूति का आधार है, इसीलिए इसे आनन्दमयकोश कहा गया है।

इस आनन्दमयकोश में ही जीवात्मा का निवास है तथा यह कोश परमेश्वर से परिपूर्ण है। ईश्वर–उपासक योगिजनों को इसी स्थान पर आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार होता हैं ।

आनन्दमयकोश की सूचिता के लिए यह आवश्यक है कि साधक संसार के सभी दोषों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुर्जनों से दूर हो जाए तथा संसार के प्रति यथार्थ वैराग्य – भाव धारण करके परमेश्वर की उपासना और संसार का उपकार सदैव करता रहे।

इस प्रकार निरन्तर प्रयास करता हुआ साधक अपने तन, मन, बुद्धि और आत्मा को पवित्र बना लेता है, तथा समाधि की उच्च अवस्था तक पहुँच जाता है। वह ईश्वर, जीव और प्रकृति को विज्ञानपूर्वक देखता है।

उसके सभी प्रकार के भ्रम, भय, शोक आदि समाप्त हो जाते हैं। वह पापमय (दु:खपूर्ण) सांसारिक और शुभ कर्मो के बल पर उस परमेश्वर का साक्षात्कार कर लेता है, जो सम्पूर्ण संसार को सञ्चालित करता है।

ध्यान, प्राणायाम, आदि द्वारा आनन्दमयकोश के शुद्ध हो जाने पर साधक के तन, मन, बुद्धि, आत्मा और कर्म शुद्ध और सुन्दर (लोक–कल्याणकारी) हो जाते हैं तथा वह सांसारिक दु:खों से छूटकर परमानन्दमय मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

प्राण के भेद

(अ) मुख्य वायु

1. **प्राण वायु :–** यह वायु नासिका–मार्ग से कण्ठ, वक्षस्थल और जीव्हा में क्रियाशील रहता है। इसके बल से ही नासिका, वाणी, हृदय, फेफड़े, आहारनाल, आदि कार्य करते हैं।
2. **अपान वायु :–** यह वायु नाभि के नीच से लेकर पैरों के अँगूठे तक क्रियाशील रहता है। इसके बल से ही नाभि से नीचे के सभी अंग–मूत्राशय, गर्भाशय, बृहदान्त्र, जघाएँ, मल–मूत्रद्वार आदि कार्य करते हैं ।
3. **व्यान वायु :–** यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है। इसके बल से शरीर के सभी अंगों का सञ्चालन होता है।
4. **समान वायु :–** यह वायु वक्षस्थल से नीचे नाभि तक क्रियाशील रहता है। इसके बल से ही –यकृत, प्लीहा, अग्नाशय, पक्वाशय, तथा पाचन–तन्त्र कार्य करते हैं।
5. **उदान वायु :–** यह वायु नाभि से ऊपर की ओर कण्ठ तथा शिर तक क्रियाशील रहता है।

इसके बल से ही वाणी तथा कण्ठ से ऊपर के अंगों (नेत्र, कर्ण, नासिका) का सञ्चालन होता है तथा यही वायु स्फूर्ति, तथा शारीरिक बल, वर्ण तथा मुख–मण्डल को आभार प्रदान करती है।

(ब) गौण वायु (सहायक वायु)

उपर्युक्त पाँच मुख्य वायु के पाँच उपवायु हैं, जो इस प्रकार हैं:–

1. **नाग:–** यह प्राणवायु का उपवायु है। इसका स्थान मुख है। इसका मुख्य कार्य उद्‌गार एवं हिचकी लाना है।
2. **कूर्म:–** यह अपानवायु का उपवायु है। इसका स्थान नेत्रों की पलकों में है। इसका मुख्य कार्य निमेष–उन्मेष (पलक झपकाना और नेत्र खोलना) है।
3. **कृकल:–** यह समानवायु का उपवायु है। इसका स्थान नाभि है। इसका मुख्य कार्य क्षुधा – तृषा (भूख–प्यास) लगाना है।
4. **देवदत्त:–** यह उदानवायु का उपवायु है। इसका स्थान श्वासनली एवं कण्ठ में है। इसका मुख्य कार्य छींक और जंभाई लाना है।
5. **धनञ्जय:–** यह व्यानवायु का उपवायु है। इसका स्थान रक्त, मांस, त्वचा, अस्थि, केश, ज्ञान–तन्तु तथा सम्पूर्ण शरीर है। इसका मुख्य कार्य शरीर का पोषन करना तथा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहना है।

इस सभी प्राणों को आगे दी गई तालिका में प्रस्तुत किया गया है:–

प्राणों की तालिका

क्रम	नाम	शरीर में स्थान	प्राण का कार्य
1	प्राण	वक्ष स्थल	श्वास लेना–छोड़ना, आहार ग्रहण करना, उद्‌गार आदि क्रियाएँ करना ।
2	समान	वक्षस्थल से	यकृत, प्लीहा, आमाशय, अग्नाशय, अँगूठे तक पकवाशय तथा पाचन तन्त्र की क्रियाएँ करना।
3	अपान	नाभि से पैर के तक	नाभि से नीचे के सभी अंगों मूत्राशय अँगूठे तक, गर्भाशय, बृहदान्त और पैरों को क्रियाशील रखना तथा मल–मूत्र, शुक्र, आर्वत, गर्भ एवं दूषित वायु को बाहर निकालना।

4.	उदान	नाभि से ऊपर कण्ठ– तथा सिर तक	वाणी की प्रवृत्ति, गायन में सहायता देना, कण्ठ के ऊपर के अंगों का संचालन करना, वमन को बारि फेंकना तथा शरीर में स्फूर्ति, बल, वर्ण और आभा उत्पन्न करना ।
5.	व्यान	सम्पूर्ण शरीर	सभी अंगों का संचालन एवं रक्त–संचार करना तथा हृदय एवं नाड़ियों को क्रियाशील रखना ।
6.	नाग	मुख	उद्‌गार एवं हिचकी लाना ।
7.	कूर्म	नेत्रों में	नेत्र खोलना व बन्द करना ।
8.	कृकल	नाभि से ऊपर कण्ठ तक	क्षुधा–तुषा लगाना (भूख–प्यास लगाना)
9.	देवदत्त	श्वासनली व कण्ठ	जम्भाई एवं छींक लाना ।
10.	धनज्जय	सम्पूर्ण शरीर	सम्पूर्ण शरीर का पोषण करना ।

उपर्युक्त विवरण में प्राणों के भेद, उनके स्थान एवं कार्य को जान लेने पर ही यह स्पष्ट होता है कि हमारे शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएँ प्राण (वायु) पर ही आधारित हैं। हमारे शरीर में जो प्राण विकृत हो जाता है, वही अपने कार्य को सुचारू रूप से करना बन्द कर देता है और शरीर में रोग उत्पत्ति हो जाती है। इसलिए अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सर्वप्रथम मानव–शरीर में स्थित प्राणों को स्वस्थ (नियन्त्रण में) रखना परम आवश्यक है।

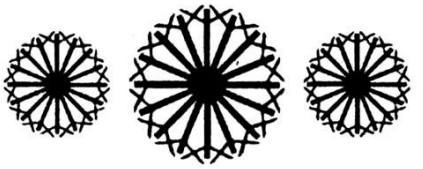

परिभाषा :– प्राणायाम संस्कृत भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है प्राणस्य + आयाम: अर्थात् प्राण को आयाम या लम्बा करना। दूसरे शब्दों में, जिस भी क्रिया में प्राण को लम्बा किया जाता है उसे प्राणायाम कहते है, श्वास द्वारा किये गये योग को भी प्राणयाम कहते हैं ।

प्राणायाम करने के सामान्य नियम :–

1. प्राणायाम प्रात: काल खाली पेट करना चाहिये ।
2. प्राणायाम शुद्ध वायु व स्वच्छ स्थान पर करना चाहियें।
3. दुर्बल शरीर वाले भस्त्रिका व कपालभाति प्राणायाम धीरे–धीरे करें।
4. बुखार से पीड़ित विशेष रोगी, गर्भवती स्त्रियों के लिए प्राणायाम वर्जित है।
5. भोजन करने के 3–4 घंटे बाद प्राणायाम कर सकते है।
6. मौसम के अनुसार ही प्राणायाम का अभ्यास करें तथा अपनी प्रकृति का ध्यान रखें। प्राणायाम में श्वास को हठपूर्वक न रोंके तथा बीच–बीच में गायत्री मंत्र या अपने आराध्य देवता का जप करें ।
7. प्राणायाम करते समय किसी भी अंग पर तनाव न करते हुये, सहज रहने का अभ्यास करें ।

प्राणायाम की सम्पूर्ण क्रिया

यद्यपि प्राणायाम की विभिन्न विधियाँ शास्त्रों में उल्लेखित है। प्रत्येक प्राणायाम का अपना एक विशेष महत्व है तथापि सभी प्राणायामों का अभ्यास प्रतिदिन नहीं कियाजा सकता इसीलिए हमने कुछ प्राणायामों को इस पुस्तक के माध्यम से दर्शाया है। जिसके करने से व्यक्ति पूर्ण रूप से निरोग एवं बलिष्ठ रह सकता है।

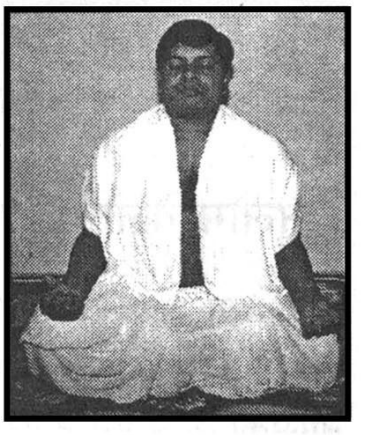

भस्त्रिका प्राणायाम

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर श्वास को नासिका से फेफड़ों तक तथा फेफड़ों से नासिका द्वारा बाहर निकालें। पूरी शक्ति का प्रयोग करें तथा पेट में वायु न भरे।

इस प्राणायाम का अभ्यास अपनी सामर्थ्य के अनुसार मंद, मध्यम अथवा तीव्र गति से करें ।

जितने समय और शक्ति का प्रयोग करके श्वास को अन्दर भरें उतनी ही शक्ति और समय का प्रयोग करके बाहर निकालें इसका अभ्यास पांच मिनट तक किया जा सकता है। उच्च रक्तचाप और हृदय रोग वाले मंद गति से ही करें। प्राणायाम करते समय आँखें बन्द रखें, ईश्वरीय ओउम् का चिन्तन करें तथा एकाग्रता से करें।

लाभ :– इससे त्रिदोष सम हो जाते है रक्त परिशुद्ध होता है। शरीर के विजातीय तत्व नष्ट हो जाते हैं तथा सर्दी, जुकाम, एलर्जी, दमा, श्वास रोग, नजला, साईनस, टॉन्सिल, गले के समस्त रोग दूर होते हैं। प्राणायाम से मन स्थिर हो जाता हैं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है हृदय व मस्तिक को शुद्ध वायु मिलने से आरोग्य लाभ मिलता है तथा बुरे विचारो से मुक्ति मिलती है ।

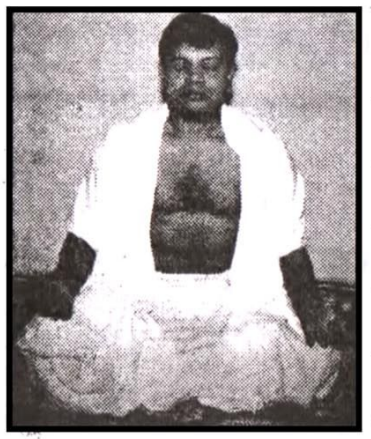

कपालभाति प्राणायाम

इस प्राणायाम की गति भस्त्रिका प्राणायाम से थोड़ी अलग है। कपालभाति प्राणायाम में श्वास को बाहर निकालने में पूरे शक्ति का प्रयोग करते हैं। सहज रूप से ही श्वास अन्दर जाने देते हैं श्वास बाहर निकालते समय पेट को अन्दर की तरफ संकुचित करते हैं। जिससे मुलाधर, स्वाधिष्ठान, मणिपुर चक्र पर विशेष बल पड़ता है। विशेष प्रयत्न करके शरीर को स्थिरता प्रदान करे तथा मुखमण्डल पर उमंग, उत्साह आदि का प्रभाव रखें। इसका अभ्यास भी पांच से दस मिनट तक करें ।

लाभ :– मस्तिष्क, मुखमण्डल पर ओज, तेज आभा व सौन्दर्य बढ़ता है। कफ रोग, श्वास रोग, हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क, रोग, साईनेस, मोटापा, मधुमेह, गैस, कब्ज, किडनी, प्रोस्टेट ग्रन्थि, पेट के समस्त रोग समाप्त होते हैं व आंते सबल रहती है ।

अनुलोम विलोम प्राणायाम

दाएं हाथ को उठाकर दाएं हाथ के अंगूठे से दाएं नासिका को बन्द करें तथा अनामिका व मध्यम दोनों अंगुलियों से बाएं नासिका को बन्द करें हाथ की हथेली को नासिका के सामने न रखकर थोड़ा ऊपर करके रखे। सर्वप्रथम बाये नासिका से श्वास

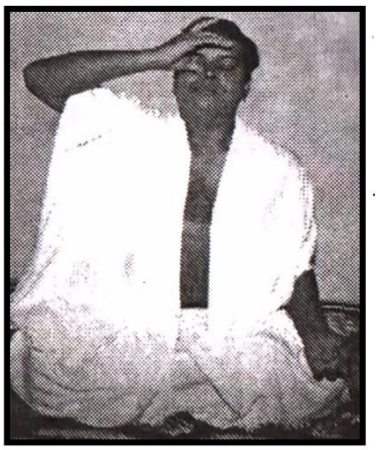

लें और दाएं नासिका से छोड़ फिर दायें नासिका से श्वास लेकर बायें नासिका से छोड़ें अर्थात् जिससे श्वास अन्दर लें उससे विपरीत वाले से छोड़ें फिर जिससे श्वास छोड़ें उसी नासिका से श्वास अन्दर लेकर विपरीत वाली से छोड़ें । जितने समय शक्ति से श्वास अन्दर ले उतने ही समय शक्ति से बाहर निकाले। इसको भी व्यक्ति अपने सामर्थ्य अनुसार मंद, मध्यम तथा तीव्र गति से करें ।

लाभ :– इस प्राणायाम से शरीर की 72 लाख 10 हजार 210 नस नाड़ियाँ परिशुद्ध तथा क्रियाशील हो जाती है। देह कान्तिमान बलिष्ठ व स्वस्थ होता है। आमवात, गठिया, कम्पवात, स्नायु दुर्बलता, समस्त वात रोग, मूत्ररोग, धातुरोग, अम्ल पित्त, शीत पित्त, सर्दी जुकाम, नजला, साईनस, अस्थमा, खांसी इत्यादि रोग दूर होते हैं। हृदय के अवरोध खुल जाते है तथा रक्तचाप के रोगी के लिए यह अति लाभदायक है तथा स्मरण शक्ति का विकास व वृद्धि होती है। ओउम् कार ध्यान व कुण्डलीनी जागृति के लिए भी लाभदायक है ।

बाहय प्राणायाम

सिद्धासन या पद्मासन में विधिपूर्वक बैठकर श्वास को पूरी शक्ति के साथ बाहर निकालें। श्वास को बाहर निकालकर मूल बंद उड्डयान बन्द व जलन्धर बन्ध लगाकर यथाशक्ति बाहर ही रोककर रखें जब श्वास का अतिक्रमण होने लगे तो बन्द को हटाते हुए धीरे–धीरे श्वास को अन्दर लीजिए। इस प्रकार इसे तीन बार दोहरायें धीरे–धीरे इसका अभ्यास 3–21 बार तक किया जा सकता है।

लाभ :– पेट के समस्त रोग दूर होते हैं। जठराग्नि तीव्र होती है। स्वप्न दोष, शीध्र पतन, मासिक धर्म विकार दूर होकर चेहरे पर तेज ओज आभा का विकास होता है। कुण्डलीनी जागृत होती है।

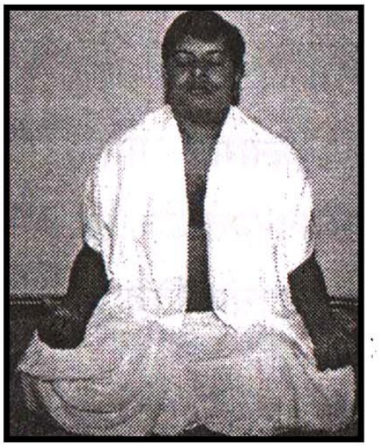

अभ्यान्तर प्राणायाम

सीधे बैठकर श्वास को बाहर निकालकर पुनः अन्दर जितना भर सके उतना अन्दर छाती में भरे और जलन्धर

बन्ध और मूलबन्ध लगाकर यथाशक्ति रोककर रखें और जब श्वास छोड़ने की इच्छा हो तो धीरे–धीरे बन्ध हटाते हुए बाहर निकाल दें ।

लाभ :– फेफड़े सम्बन्धी समस्त विकार दूर होते है। दमा रोगियों के लिए विशेष लाभदायक है तथा ध्यान के लिए भी उपयोगी है।

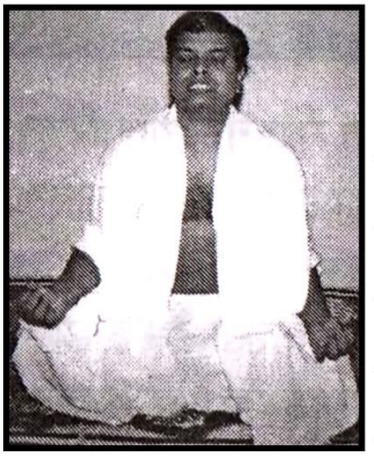

सीत्कारी प्राणायाम

ध्यानात्मक आसन में बैठकर जिह्वा को ऊपर तालु मे लगाकर ऊपर नीचे की दन्त पंक्ति एक दम सटाकर होठों को खोलकर रखें अब धीरे–धीरे सी–सी की आवाज करते हुए मुँह से श्वास लें और फेफड़ों को पूरी तरह भर लें तथा जलन्धर बन्द के बन्द थोड़ी देर रूकें । फिर रेचक कर उसका अभ्यास 8–10 बार करें ।

लाभ :– इससे दन्त रोग पाइरिया, गले, मुँह, नाक, जिह्वा के रोग दूर होते हैं। निद्रा कम आती है। उच्च रक्तचाप ठीक होता है। पित्त के रोगों में लाभदायक है ।

भ्रामरी प्राणायाम

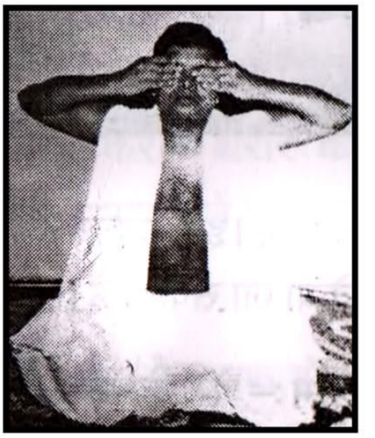

श्वास को पूरी शक्ति से अन्दर भरकर दोनों हाथों को उठाकर दोनों हाथों की मध्यमा अंगुलियों से दोनों आंखों को बन्द करके थोड़ा दबायें दोनों अंगूठों से दानों कानों को बन्द कर लें अब भ्रमर की भाँति गुंजन करते हुए भ्रमर नाद के रूप में ओउम् का उच्चारण करते हुए श्वास को नासिका से धीरे–धीरे बाहर निकालते समय मन को स्थिर करके रखें इसका अभ्यास भी 11–21 बार तक किया जा सकता है।

लाभ :– मन की चंचलता दूर होकर मन स्थिर होता है। मानसिक तनाव उत्तेजना उच्च रक्तचाप हृदय रोग, स्मरण शक्ति आदि के लिए बड़ा लाभकारी है तथा नकारात्मक विचार समाप्त होकर सकारात्मक विचार चिन्तन व उत्साह बढ़ता है।

सूर्य भेदन प्राणायाम

पूर्वोक्त स्थिति में ही बैठकर दाहिनी नासिका से पूरक भर के यथा शक्ति कुम्भक कर के बायीं नासिका से शनैः शनैः रेचक करें। इस प्रकार बार–बार करे। आरम्भ में 10 से 20 प्राणायाम करे। इस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में उष्णता बढ़ती है। अतः इसका अभ्यास शीत ऋतु में करना हिताकरी है। इसको करने से शिरो, कृमि रोगों और 74 प्रकार के वायु विकार समूह नष्ट होते है।

उज्जयीं प्राणायाम

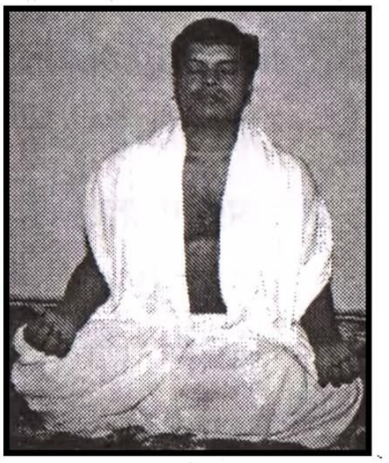

दोनों नासिकाओं से पूरक भर के यथा शक्ति कुम्भक करे । फिर बायी नासिका से शनैः शनैः ऐचक करे। यह प्राणायाम उष्ण है इसलिये इसका अभ्यास शीत ऋतु में लाभदायी है आरम्भ में 10–20 प्राणायाम करे। इसके अभ्यास से दमा, क्षय, गुल्म तथा जालन्ध का नाश होता है और आयु की वृद्धि होती है ।

शीतकार प्राणायाम

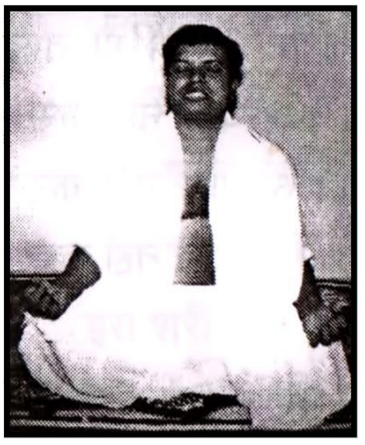

दोनों नासिकाएं बन्द करे जिह्वा और ओष्टद्वार वायु का पान करे पूरक भरे। यथा शक्ति कुम्भरक करके दोनों नासिकाओं से शनैः शनैः रेचक कर यह प्राणायाम शीतल है इसलिए ग्रीष्म ऋतु में इसका अभ्यास श्रेयस्कर है। इसके अभ्यास से हरेक प्रकार के ताप रोन्दिा, एकांतरा, चौथिया इत्यादि तिल्ली बरोड़ा आदि रोगों का नाश करता है।

तीन वर्षो के निरन्तर 100–100 की संख्या में अभ्यास से वृद्धावस्था दूर होकर युवावस्था की प्राप्ति होती है। सफेद बाल काले हो जाते है। किसी भी प्रकार का विष नहीं भापता। इसका अभ्यास काक भुषुडि जी ने किया था ऐसा किन्ही–किन्ही ग्रन्थों का कथन था।

योगासन करने के नियम

1. आसन प्राणायाम, प्रातः सायं दोनो समय कर सकते है यदि दोनों समय नहीं कर सकते है तो प्रातः काल का समय उत्तम है। प्रातः शौच आदि से निवृत होकर खाली पेट तथा भोजन के 5–6 घंटे बाद सायं काल कर सकते है। आसन करने से पहले पेट साफ होना आवश्यक है।

2. आसन करने के लिये स्थान शान्त व स्वच्छ वायुमण्डल होना चाहिए किसी प्राकृतिक स्थान या उद्यान वाटिका में किया जाय तो बहुत अच्छा है। यदि घर में करना पड़े तो घी का दीपक जला लें ।

3. आसन करते समय आसनोपयोगी हल्के तथा ढीले वस्त्र धारण करें तथा भूमि पर बिछाने के लिए मुलायम दरी या कम्बल का प्रयोग करें । खुली जमीन पर आसन न करें तथा इसका अभ्यास अपने सामर्थ्य के अनुसार ही करें तथा वृद्ध व्यक्तियों को आसन प्राणायाम अल्प तथा धीरे–धीरे करना चाहिए। गर्भवती महिलायें कठिन आसन आदि न करें। बीच–बीच में गायत्री मंत्र जाप का श्वासन विश्राम इत्यादि भी करें ।

4. हृदय दोर्बल्य वाले अधिक भारी आसन तथा अण्ड वृद्धि वाले वे आसन नहीं करे जिससे नाभी के बीच वाले हिस्से पर अधिक दबाब पड़ता हो तथा कमर, गर्दन तथा दर्द इत्यादि वालों को आगे झुकने वाले अभ्यास नहीं करना चाहिए तथा हरनिया जैसे रोगियों को पीछे झुकने वाले अभ्यास नहीं करने चाहिए। महिलाओं को ऋतुकाल में चार पांच दिन आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

5. भोजन आसन के आधें घंटे के पश्चात करना चाहिए आसन के तुरन्त पश्चात चाय कॉफी इत्यादि नहीं लेने चाहिए ।

6. आसन करते समय सामान्य नियम है कि आगे के तरफ झुकते समय श्वास अन्दर भरते है, श्वास यथा शक्ति नाक से ही लें और छोड़ें ।

7. आसन करते समय जब अधिक थकान हो तब कुछ समय का विश्राम आदि कर लें। अर्थात् एकाग्रता से मंत्र का जाप कर लें।

योगासन

शारीरिक व मानसिक रूप से सशक्त रहकर ही मानव अपने समाज तथा देश का कल्याण कर सकता है। स्वास्थ्य अर्थात् उत्साह कार्य क्षमता यश आनन्द जीवन का सुख प्राप्त करने के लिए सशक्त और कसा हुआ सुदृढ़ शरीर, निरोग मन अनिवार्य साधन है। योगासनों की यह विशेषता होती है कि ये क्रियाएं जितनी शरीर को कसती है। उससे अधिक मन की एकाग्रता बढ़ाती हैं और मन की एकाग्रता से पैदा होने वाली मेघा शक्ति, धारणा शक्ति और बौद्धिक शक्तियों का विकास करती है। अतः सहज ही आसनों से स्थिरता प्राप्त होने से और श्वासोच्छवास नियंत्रित होने से जीवन आयु लम्बी होती है।

शरीर की टूट–फूट व उसके कार्य करने से जो विकार, भोजन के पचने के बाद जो मल शरीर में इकट्ठा होता है उसे शरीर चार मार्गो से बाहर निकालता है।

1. नासिका से श्वास द्वारा
2. गुदा से मल द्वारा
3. मूत्र द्वारा
4. चर्म से मैल व पसीने द्वारा यह मल विजातीय द्रव्य शरीर में रह जाए तो रोग उत्पन्न होते हैं। रोगों का एक ही कारण, शरीर के विकास को बाध्य कर रोकना। जिससे हम कभी भी निरोगी नही हो सकते। योगासन पद्धति ही इन चारों मार्गो को खुला रखती है। वही सम्बन्धित सभी अंगों को पुष्ट करती है ताकि शरीर में विकार रूकने न पायें।

इस शरीर को चलाने के लिए जिस प्रकार आहार की आवश्यकता है उसी प्रकार निरोगी रहने के लिये प्राणायाम की आवश्यकता है जो व्यक्ति आसन प्राणायाम का अभ्यास नहीं करता है उसके शरीर की ओज तेज हीन होकर अस्वस्थ तथा कान्तिहीन हो जाती है। जबकि नियमित रूप से आसन प्राणायाम करने से दुर्बल रोगी और कुरूप व्यक्ति भी बलवान और स्वस्थ हो जाता है। हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा, बवासीर, गैस, रक्तचाप, मानसिक तनाव आदि का मुख्य कारण शारीरिक परिश्रम का न होना है यदि हम रोज प्रातः योगाभ्यास करे तो ये रोग कभी भी नहीं हो सकता है। नित्य योगाभ्यास करने वाला व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ सकता। एक प्रचलित कहावत है "स्वस्थ शरीर

में" स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ आसनों को निर्देशित किया जा रहा है।

सूक्ष्म आसन :–

ये आसन शरीर की सन्धियों को स्वस्थ निरोग एवं अरोग्यता प्रदान करते है।

अभ्यास 1

दण्डासन मे बैठ जाएं दोनों पैर मिले हुए सामने की ओर सीधें रहे कमर के दोनों ओर हाथों की हथेलियां जमीन पर टिकी हुई हो अंगुलियाँ पीछे की ओर हाथ तथा कमर को बिल्कुल सीधे रखें ।

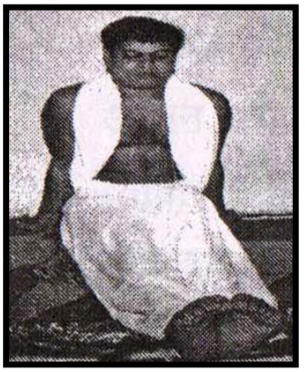

अभ्यास 2

दोनों पैरों की अंगुलियां तथा अंगूठों को आगे की ओर धीरे धीरे बलपूर्वक दबाएँ उसी प्रकार पीछे की ओर करें पूरी शक्ति का प्रयोग करें। एडियां स्थिर रखें ।

अभ्यास 3

दोनों पैरों को मिलातें हुए पूरे पंजों को धीरे–धीरे आगे पीछे दबाएं।

अभ्यास 4

दोनो पैर के पंजों को वृताकार धुमाते हुए पंजे से शून्य जैसी आकृति बनायें। फिर इसको विपरीत दिशा में करें ।

नोट

इसका अभ्यास धीरे–धीरे तथा पूरी शक्ति से करें तथा हरेक अभ्यास को 15–20 बार दोहराएँ।

लाभ

इससे जोड़ों के दर्द ठीक हो जाते है। स्नायुमंडल को शक्ति व स्फूर्ति मिलती है तथा पैर की अंगुलियाँ, एडियां, पंजे, घुटने, पिण्डलियां तथा पैर के कम्पन इत्यादि रोग ठीक हो जाते है।

(अभ्यास 1 के अनुसार)

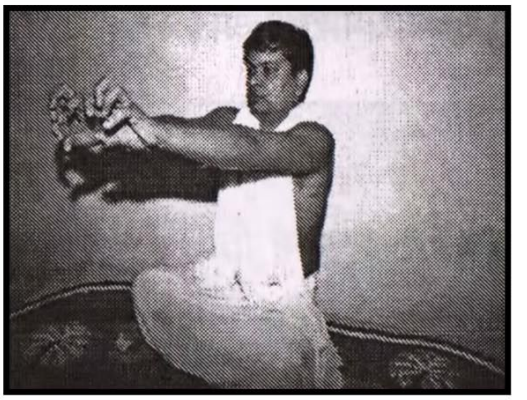

अभ्यास 5

किसी भी सीधे आसन में बैठ जाएं दोनो हाथों को सामने फैलाकर हथेलियों को नीचे की और रखतें हुए कंधे के सामने सीधें रखै फिर अंगुलियाँ के जोड़ों को धीरे–धीरे मोंडे और सीधा करें ।

अभ्यास 6

दोनों हाथ की मुठियाँ बन्द करकें कंधों के सामने सीधें रखें तथा मुठियाँ को वृत्ताकार सीधे फिर उल्टा घुमाएँ। कोहनियाँ सीधी रहनी चाहिए । (अभ्यास 5 के अनुसार)

अभ्यास 7

दोनो हाथ की कोहनियों को मोड़तें हुए अंगुलियों का कन्धों से स्पर्श करें फिर दोनों कोहनियों को आपस में सटाते हुए वृत्ताकार गोल बहुत बड़ा शून्य बनाएं इसी प्रकार विपरीत दिशा में करें ।

नोट :– इस अभ्यास को भी पूरी शक्ति से करें तथा प्रत्येक अभ्यास को 15–20 बार दोहरायें ।

जानु शिरासन

दण्डासन में बैठकर दाएं पैर को मोड़कर बाएं पैर के जंघे की ओर ले जातें हुए मूल में लगाएं। दोनो हाथों को ऊपर उठाते हुए श्वास को बाहर निकालते हुए नासिका को दाएं पैर के घुटने में लगाएं तथा दोनों हाथ की हथेलियों से पांव के एडियों को पकड़ लें। इसी प्रकार दूसरी तरफ करें । अभ्यास इसी प्रकार दूसरे पैरों से करें ।

नोट :– इसका अभ्यास 15 बार करें तथा कमर दर्द वाले न करें ।

लाभ :– वीर्य सम्बन्धी दोष दूर होतें है एकाग्रता बढ़ती है। सियाटिका दर्द ठीक होता है

तथा मांसपेशियों और स्नायु मण्डल में लचक पैदा होती है तथा सबल होती है।

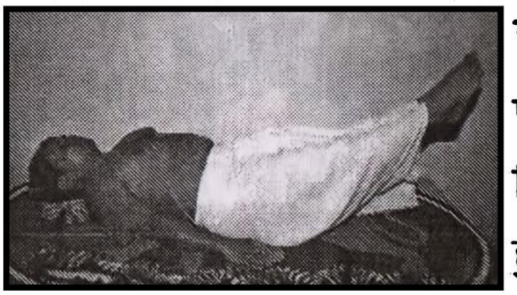

उत्तानपाद आसन :–

पीठ के बल लेटकर हथेलियों को सामने जमीन पर टिकाते हुए सीधें करें तथा पैर आगे पंजे सीधे मिले हुए हो। अब श्वास अन्दर भरकर पैरों को धीरे–धीरे भूमि से ऊपर उठाये, झटके न दें । जिनको कमर दर्द रहता है वे एक पैर से धीरे धीरे करें ।

लाभ :– इससे आंते सबल तथा निरोगी होती है तथा कब्ज गैस दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा नाभि का टलना पेट दर्द श्वास रोग, कमरदर्द में भी उपयोगी है।

नोट :– इसका अभ्यास 15–15 बार करें ।

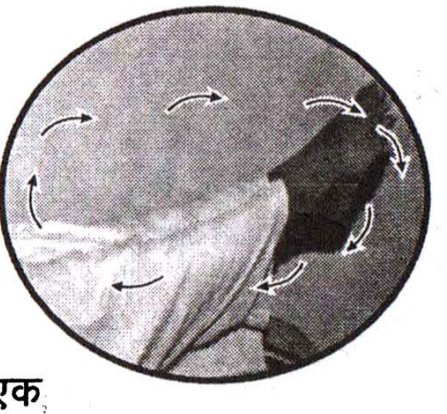

पाद वृन्तात आसन :–

सीधें लेटकर दाएं पैर को उठाकर शून्य आकृति बनातें हुए घुमाएं । इसी प्रकार भूमि पर टिकाएं हुये ही बहुत बड़ा शून्य बनाएं, इसी प्रकार विपरीत दिशा में घुमाएं। उसके पश्चात दूसरे पैर से फिर दोनों पैरों को एक साथ उठाकर क्लाक वाइज एन्टी क्लाक वाइज करें।

लाभ :–

इससे अतिरिक्त बढ़े हुए पेट का भार कम हो जाता है तथा कमर की बढ़ी हुई मेद को निश्चित रूप से दूर करता है तथा शरीर हल्का ओर सुडौल हो जाता है।

नोट :– इसका अभ्यास भी 15–15 बार करें ।

पवन मुक्तासन :–

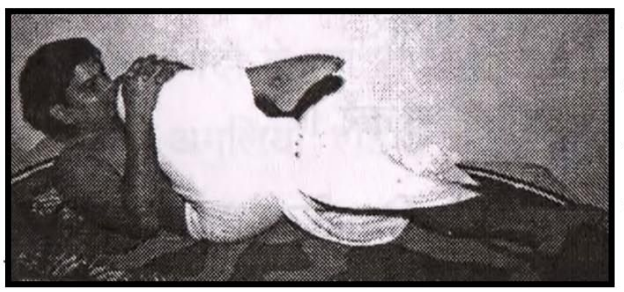

पीठ के बल लेट जाएं दोनो पांव मिलाए । दायी टांग मोड़कर घुटना छाती तक ले जाएं दोनों हाथों से घुटने को पकड़कर श्वास को बाहर निकालते हुए नासिका को घुटने से सटाएं दूसरी टांग

बिल्कुल सीधे रहेगी उसी प्रकार दूसरे पैर से करें 15–20 बार करने के बाद दोनों पैरों से करें ।इसका अभ्यास भी 15–20 बार करें।

लाभ :–

इस आसन के अभ्यास से अपानवायु की गति ठीक हो जाती है तथा स्त्री रोग अल्पावर्त, कष्टावर्त एवं गर्भाशय संबंधी रोगों के लिए तथा कब्ज गैस, अम्ल पित्त, हृदय रोग, गठिया, कमरदर्द तथा पेट की बढ़ी हुई चर्बी कम हो जाती है। इसके अभ्यास से स्लीप डिस्क, सियाटिका इत्यादि भी ठीक होता है।

नौकासन :–

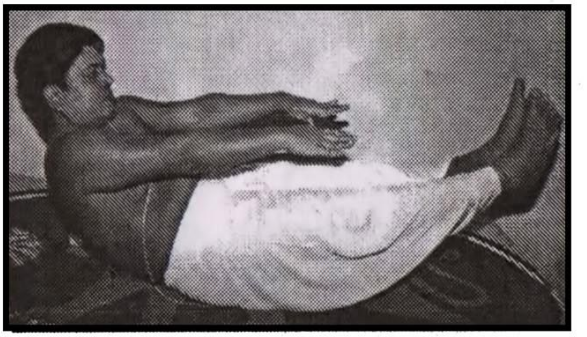

सीधे लेटकर दोनो हाथों को जंघाओं के ऊपर रखे अब श्वास अन्दर भरते हुए पहले सिर एवं कंधों को ऊपर उठाये फिर पैरों को भी ऊपर उठायें कमर का भाग, जमीन में सटा रहेगा तथा हाथ पैर सिर समान्तर नाव की तरह उठे रहेंगे। कुछ देर अपनी शक्ति के अनुसार रूककर धीरे–धीरे श्वास बाहर निकालते हुए जमीन पर लेट जायें।इस प्रकार से दस बार आवृति करें ।

लाभ :–

इसका लाभ उत्तानपादासन के समान होते है तथा आंत आमाशय, अग्नाशय यकृत, हृदय एवं फेफड़े संबंधी बीमारी दूर होतें है ।

मकरासन :–

पेट के बल लेटकर दोनों हाथों की कोहनियों को मिलाकर स्टैण्ड बनाए तथा हथेलियां ठोड़ी के नीचें लगाएं छाती को ऊपर उठायें पैरों को मिलकर रखें श्वास अन्दर भरते हुए पहले एक पैर को फिर दोनो पैरों पर मोड़तें हुए एड़ियों से स्पर्श करने का प्रयास करें । इसका अभ्यास 15–20 बार करें ।

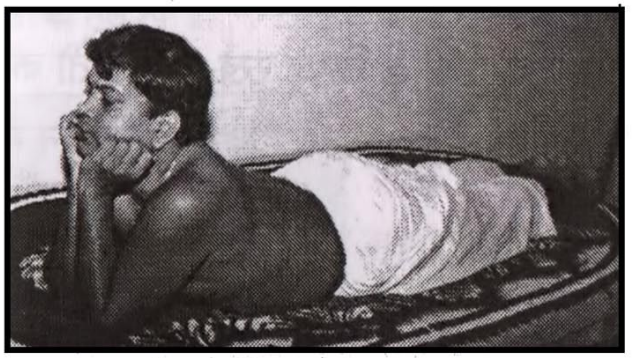

लाभ :–

स्लीप डिस्क, सरवाईकल, सियाटिका घुटनों के दर्द, अस्थमा एवम् फेफड़ें संबंधी रोग दूर होतें है ।

भुजंगासन :–

पेट के बल लेट जायें पांव को पीछे की ओर खींचकर रखें हाथों की हथेलियां भूमि पर छाती के दोनों ओर रखें श्वास अन्दर भरकर छाती और सिर को धीरे धीरे नाभि तक उठायें। बाजुओं का सीधा रखते हुए आकाश को देखें इसका अभ्यास 1 5 बार धीरे धीरे करें ।

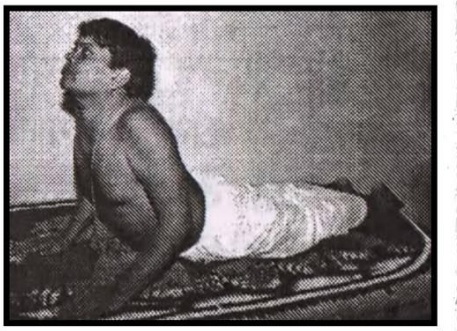

लाभ :–

सर्वाइकल, स्पोंडोलाइटीस, स्लीप डिस्क, मेरूदण्ड के समस्त रोग, मधुमेह और उदर रोगों में महिलाओं के मासिक धर्म तथा कफ पित्त में विशेष लाभदायक है।

वज्रासन :–

टांगो को मोड़कर घुटनों के बल इस प्रकार बैठे कि पीछे पांव के अंगूठे मिले हो एडियां खुली पिड़ियों पर नितम्ब पांव लेटे हुए मेरूदण्ड को सीधा रखते हुए हाथ घुटनों पर और सामने देखें इस प्रकार आप कभी भी बैठ सकते है। भोजन करने के बाद इस आसन में जरूर बैठना चाहिए ।

लाभ :–

इससे पाचन शक्ति बढ़ती है। गैस, कब्ज, अम्ल, पित्त, घुटनों का दर्द ठीक होता है यह ध्यान के उपयोगी है। इसका अभ्यास पाँच से पन्द्रह मिनट तक करें ।

सुप्त वज्रासन :–

वज्रासन में बैठकर धीरे धीरे पीछे की ओर झुकते हुए सिर को जमीन पर टिका दें। घुटने मिल हुए हो और आपस मे सटे हुए हो तथा हाथों को पंजो के ऊपर रखे और छाती को ऊपर की ओर उठाने को प्रयास करें धीरे–धीरे कोहनियों का सहारा लेते हुए वज्रासन में बैठ जाए ।

लाभ :–

कब्ज, कोष्ठबद्धता दूर होकर बड़ी आंत सक्रिय होती है नाभि का टलना तथा गुर्दे के लिए लाभदायक है ।

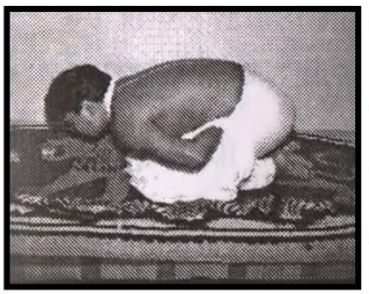

मंडुकासन :–

वज्रासन की स्थिति में बैठकर दोनों हाथो की मुठियाँ बन्द करें। अन्दर की तरफ रखकर दबाते हुए नाभि के दोनों और लगायें तथा श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तरफ झुके। हमारी दृष्टि सामने की ओर हो। इसको 10–15 बार दोहरायें ।

लाभ :–

अग्नाशय को सक्रिय करता है जिस कारण डायबीटिज दूर हो जाता है। उदर रोग तथा हृदय रोग में लाभदायक है।

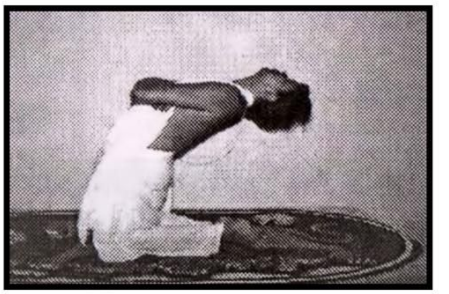

अर्धचन्द्रासन :–

वज्रासन में बैठकर घुटनों के बल खड़े हो जायें। दोनो हाथों को छाती के ऊपर एक दूसरे से पकड़े तथा शक्ति से पीछे की तरफ झुकें ।

लाभ :–

सर्वाइकल, स्पोडोलाइटिस सियाटिका, कमरदर्द, मेरूदण्ड के रोग दूर होते है तथा श्वास तंत्र और फेफड़ों के लिए लाभदायक है दमा तथा थायराइड में भी लाभदायक है।

उर्द्धताड़ासन :–

सीधे खड़े होकर हाथों के अंगुलियां को आपस में डालते हुए सिर के ऊपर रखें पैर को मिलाकर रखें श्वास को अन्दर भरते हुए पंजो के बल खड़े होकर पूरे शरीर को ऊपर की तरफ खीचें। हथेलियाँ ऊपर की तरफ खींची हुई हो ।

तिर्यकतड़ासन :–

सीधे खड़े होकर हाथ की अंगुलियाँ को एक दूसरे में डालते हुए सीधे ऊपर की तरफ दूसरे में डालते हुए सीधे ऊपर की तरफ कीजिए। पैरों को फैलाकर कमर को झुकायें बिना श्वास अन्दर भरते हुए जितना झुक सकें उतना दायें बायें मोड़ें। पैरो में लगभग एक फिट का अन्तर हो ।

लाभ :–

पेट की बीमारियों जैसे गैस कब्ज, अम्लपित्त, बच्चों की लम्बाई बढ़ानें इत्यादि में लाभकारी।

सिहांसन :–

वज्रासन में बैठाकर घुटनों को खोल ले हाथों के अंगुलियों को पीछे की ओर करकें पैर के बीच में सीधा रखें। श्वास को अन्दर भरकर जीभ को बाहर निकालकर सिंहवत गरजना कीजिए दृष्टि सामनें की ओर हो इसका अभ्यास तीन चार बार करें। इसको करने के पश्चात लार को छोड़ते हुए हल्के हाथ से गले की मालिश करें ।

लाभ :–

टॉन्सिल, थॉयराइड, गलें संबंधी रोग, कान रोग, तुतलाना दूर होकर स्पष्ट उच्चारण तथा खर्राटे आदि को दूर करता है ।

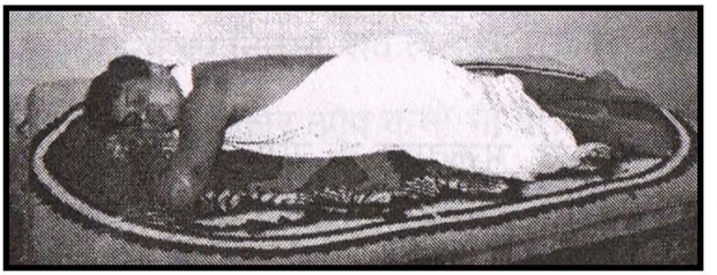

बाल आसन :–

पेट के बल लेट जाएं दांये हाथ को सिर के नीचे भूमि पर रखें तथा गर्दन को बायी ओर घुमाते हुए सिर की हथेलियों के ऊपर रख दें तथा बायें हाथ की हथेली को दायें हाथ की हथेली पर जमी की ओर मोड़ते हुए रखे ओर बाएं पैर को घुटने से मोड़ते हुए सामने कर ब्लाक जैसा लेट जाऐं इसी प्रकार दूसरी ओर से करें ।

लाभ :–

मानसिक तनाव, उच्च रक्तचाप, शरीर, मन, मस्तिष्क एवं आत्मा को पूर्ण विश्राम उत्साह व आनन्द मिलता है।

हलासन :–

पीठ के बल लेटकर धीरे धीरे श्वास अन्दर भरते हुए पैरों को उठायें धीरे–धीरे पैरों को सिर के पीछे की ओर ले जाते हुए भूमि पर टिका दें श्वास अन्दर की ओर हो इसका अभ्यास तीन चार बार करें। इसको

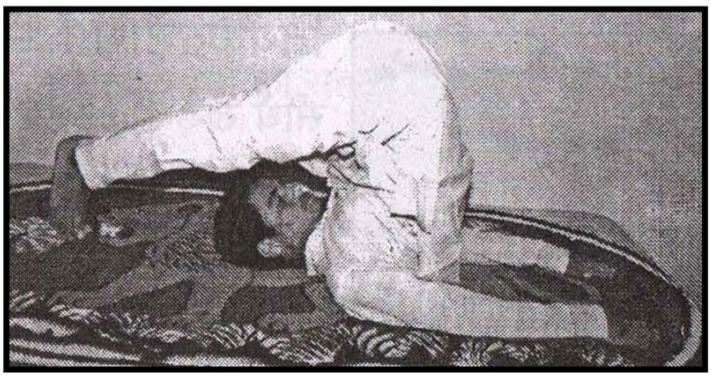

करने के पश्चात् लार को छोड़तें हुए हल्के हाथ से गले की मालिश करें ।

लाभ :–

मेरूदण्ड तथा मांसपेशियां स्वस्थ होती है। थॉयराइड ग्रन्थि के ठीक होने से मोटापा, बौना पन, दुर्बलता आदि रोग दूर होता है तथा अजीर्ण गैस कब्ज मन्दाग्नि, तिल्ली, यकृत, हृदय रोग, शुगर कष्टाव्रत आदि स्त्री रोग में लाभदायक है।

सर्वागासन :–

पीठ के बल सीधे लेटकर पैरो को मिलाएं श्वास को अन्दर भरते हुए पैरों को धीरे धीरे ऊपर 90° तक उठाते समय हाथों को उठाकर कमर के पीछे लगाएं कोहनियां जमीन पर टिकी हुई हो और पैर को मिलाकर सीधे रखें तथा हमारी दृष्टि ऊपर की अंगुलियां पर हो वापस आते समय धीरे–धीरे आयें तथा यथाशक्ति पैर को ऊपर उठाकर रखें।

लाभ :–

थॉयराइड, मोटापा, दुर्बलता कद वृद्धि एड्रिनल, शुक्र ग्रन्थि एवम् डिम्ब ग्रन्थियों को सबल बनाता है।

बद्ध पद्मासन :–

पहले बायीं जाघं के ऊपर दाहिनें पैर को रखें, फिर बायें पैर को दाहिनी जांघ पर रखें। यही पदमासन है। परन्तु प्राचीन सम्प्रदाय के अनुसार पहले बायाँ पैर रखें और उसके ऊपर दाहिना पैर रखें इन दोनों में से अपनी प्रकृति के अनुसार जैसा ठीक हो वैसा करें। दोनो एड़ियों को नाभि के दोनो ओर लगें रहें और पृष्ट भाग से दोनों हाथों को ले जाकर बायें हाथ से बाऐं पैर के अगूँठें का और दाहिने हाथ से दाहिने पैर को अँगूठे को पकड़े जालन्धर बन्द लगाकर दृष्टि को नासिका के अग्रभग पर रखें।

श्वासन :–

भूमि पर शव के समान चित्त लेटे रहना। दोनो पैरो के अग्रभाग को मिलाकर ऊपर रखना, पैर की अँगुलियों को ऊपर सीधा रखना और हाथों को सीधा पैरों की ओर बढ़ाकर छोड़ देना तथा सारे अंग–प्रत्यगों को शिथिल करे देना श्वासन कहलाता है। आसन

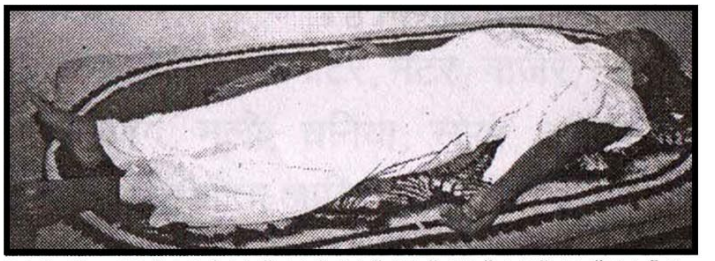

अथवा प्राणायाम के पश्चात नाड़ियों के क्षोम को शान्त करने के लिए इस आसन का उपयोग होता है। साधक को प्रतिदिन अभ्यास के पश्चात् श्वासन के द्वारा आधा घंटा विश्राम करना चाहिए। श्वासन में नसे सीधे रहती हैं और रक्ता मिश्रण क्रिया प्रकृति के अनुकूल होने लगती है। प्रणातत्व मस्तिष्क की ओर गति करने लगता है जिससे मन शान्त हो जाता है।

पद्मासन :–

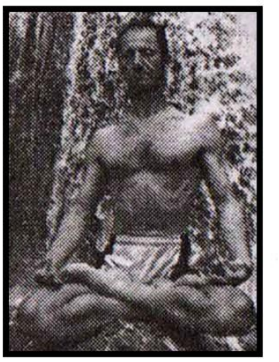

लाभ :–

ध्यान के लिए उत्तम आसन है मन की एकाग्रता एवं प्राणोत्थान में सहायक हैं। जठराग्नि को तीव्र करता है वातव्याधि में लाभदायक है।

सेतुबन्ध–आसन :–

सीधे लेटकर दोनों घुटनों को मोड़कर रखें। कटि प्रदेश को ऊपर उठाकर दोनों हाथों को कोहनी के बल खड़े करके कमर के नीचे लगाये तथा कटि को ऊपर स्थिर रखते हुए पैरों को सीधा करें। कन्धें तथा सिर भूमि पर टिके रहे। इसका अभ्यास 10–12 सेकेड करें वापस आते समय नितम्ब एवं पैरों को धीरे–धीरे जमीन पर टेके। हाथों को एकदम कमर से नहीं हटाना चाहिए। इसका अभ्यास 8–10 बार करें।

लाभ :– स्लिप डिस्क, कमर एवं ग्रीवा–पीड़ा तथा पेट के रोगों में लाभदायक है।

पश्चिमोतानासन :–

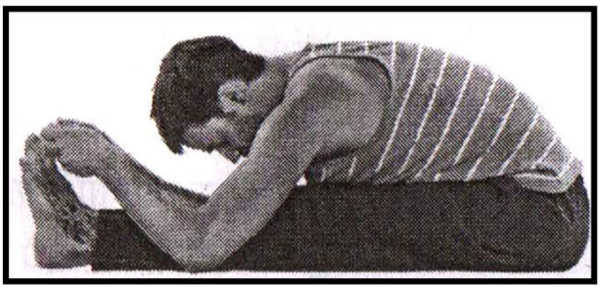

सीधे बैठकर दोनों हाथों के अंगूठों एवं तर्जना की सहायता से पैरों के अंगूठों को पकड़े श्वास बाहर निकालते हुए नासिका को घुटनों में लगाने प्रयास करे घुटने पैर सीधे जमीन पर टिकी हुई हो। ऐसी स्थिति में 2–3 मिनट रहे फिर श्वास बाहर निकालते हुए वापस आ जाये। इस आसन के पश्चात भुजंगासन एवं शलाभासन करने चाहिए ।

लाभ :–

जठराग्नि को प्रदीप्त करता है एवं वीर्य–सम्बन्धी विकारों को नष्ट करता है। कद वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण आसन है।

आहार संबन्धी सामान्य जानकारी

पौष्टिक जलपान, स्वास्थ्यरक्षक रोग निवारक भोजन करना चाहिए ।

- दिनचर्या, व्यवसाय, सेवाकार्य के अनुसार निर्धारित समय पर ताजा गुणकारी, सादा भोजन करना चाहिए ।
- भोजन ऋतु के अनुसार अपने लिये हितकर एवं पचने योग्य मात्रा में लेना चाहिए।
- भोजन–बैठकर स्वस्थ्यचित्त, बिना बातचीत और हंसी मजाक किये यथासम्भव मौन रहकर करना चाहिए।
- तीसरे पहर, सायंकाल भी थोड़ी मात्रा में हितकर एवं पचने योग्य मात्रा में जलपान लेना चाहिए।
- रात्रि का भोजन सोने से एक घण्टे पूर्व कर लेना चाहिए।
- सोने से पूर्व लगभग एक सौ कदम चलना चाहिए। मूत्र त्यागकर बायें करवट सोने से पाचन क्रिया ठीक रहती है। यथासम्भव छः घण्टे गहरी नींद सोना अत्यावश्यक हैं।
- यथासंभव ब्रहमचर्य (स्वपत्नी संभोग) नाना प्रकार के यौन रोगों से बचाव करता है।
- चाय, कॉफी, बीड़ी, सिगरेट, गांजा, भांग, चरस, सुरती–तम्बाकू, सुपारी प्रधान पान के सेवन से तरह–तरह के रोगों की परेशानी मोल नहीं लेनी चाहिए ।
- निद्रा और नशा करने वाली औषधियों का अभ्यासी कतई नहीं होना चाहिए।
- जुआ, ताश, लाटरी आदि दुर्व्यसनों द्वारा धन कमाना भी पौरूष को समाप्त करता है। अतः परिश्रम पूर्वक साफ सुथरा व्यवसाय स्वास्थ्यरक्षक तथा रोगनिवारक होता है।
- ऋतुओं में पायी जाने वाली शाक सब्जियाँ, फल स्वास्थ्यरक्षक रोगनिवारक होती है। जैसे:–

शीत ऋतु में :-

- पालक का साग, बैंगन, पत्ता गोभी, फूल गोभी, लाल टमाटर, मटर, गाजर, (काली विशेषकर), मेंथी, बथुआ, चौलाई का साग, मूली, धनिया, सोया, हरी मिर्च, अदरक, आंवला, अमरूद, सेब, केला, अनार, पपीता आदि ।

ग्रीष्म ऋतु में :-

☞ कच्चा केला, कुम्हड़ा, तरबूज, ककड़ी, खीरा, आम, कटहल आदि फल एवं सब्जी के रूप में लेना चाहिए।

मसालों में प्रयोग आने वाले द्रव्य :-

☞ जीरा, धनिया, अजवायन, हींग, पाचक, भूख बढ़ाने वाले व गैस का नाश करने वाले हैं ।

☞ मैथी, कलोंजी, आंव समाप्त करते हैं आंवले की चटनी त्रिदोषशामक हैं।

☞ आम, इमली, करौंदा, नींबू की खटाई कम से कम सेवन करना चाहिए। मट्ठा सब तरह से लाभकारी हैं।

☞ दूध भोजन के साथ या आधे घण्टे पूर्व जैसा अनुकूल पड़े प्रयोग करना चाहिए।

☞ घी, तेल (सरसों) में तले भुने पदार्थ कम से कम सेवन करना चाहिए अन्यथा गैस, अफारा, आंत कोलाईटिस, कब्ज आदि रोग पीछा नहीं छोड़ते हैं ।

☞ मदिरापान का अभ्यास यकृत (लीवर), आमाशय, हृदय, मूत्र एवं धातु रोगकारी हैं। आयुर्वेदीय आसव आरिष्ट वैद्य परामर्श से रोग तथा स्वास्थ्य हितार्थ पीना ठीक हैं।

क्या मिलाकर खा सकते हैं :-

☞ **मट्ठे मे :** मक्के का भुना चूर्ण, रोटी आदि। दही के साथ मूंग का यूष, शक्कर, घी, शहद, आंवला चूर्ण।

☞ **दूध के साथ :** आम, खजूर का फल ।

☞ **भोजन करने के बाद :** अनारदाना का रस, अमरूद के सौंफ, केला के आद छोटी इलायची, मूली पत्ते डंठल सहित, गाजर और मैथी साग, इमली और गुड़ खरबूजे के साथ शक्कर या खाड़ का शर्बत, चावल के साथ नारियल से बनी वस्तुएं लेने से लाभ होता है।

क्या मिलाकर नहीं खाना चाहिए :-

☞ **दूध के साथ :** नमक, मूली, कटहल, करौंदा, बड़हल, सेम, इमली, नींबू, गुड़ एवं तिल से बने पदार्थ, तेल में पके पदार्थ, जौं का सत्तू, शहद, केला, बेल, कैथ का फल, नारियल, अखरोट, बेर, खट्टे रस वाले फल, हरी सब्जी, साग, सहिजन की फली, कुलथी, उड़द तथा मोठ से बने पदार्थ नहीं खाना चाहिए।

- मधु तथा घी बराबर तौल कर कभी नहीं खाना चाहिए ।विष तुल्य है।
- **दही के साथ :** दूध, खीर, पनीर, केला, मूली, खरबूज, बेल का फल, गरम भोजन।
- **मूली के साथ :** मक्खन, गुड़, नहीं खाना चाहिए। उड़द के साथ दही मूली नहीं खाना चाहिए।
- **खीर के साथ :** खिचड़ी, सत्तू नहीं खाना चाहिए। चावल के साथ सिरका नहीं खाना चाहिए।
- **कांजी के साथ :** तिल में बने पदार्थ तथा पूड़ी नहीं खानी चाहिए ।
- **भोजन के बाद :** केला, ककड़ी, कन्द से बने पदार्थ, गन्ने के विकृति से बने पदार्थ, कमल नाल का सेवन नहीं करे ।

कब क्या खाने से रोग बुलाया जाता है :-

- थके हुए शरीर को तत्काल भोजन देने से गुल्म (वायुगोला) तथा वमन हो सकता है।
- तेज धूप से आने पर या आग से तपे हुए दूध पीने से रक्त विकार हो सकता है।
- पोई के शाक के सरसों के तेल में पकाकर खानेसे अतिसार (पतले दस्त) हो सकता है।
- बसन्त (चैत्र–वैशाख) ग्रीष्म (ज्येष्ठ–आषाढ़) एवं शरद (आश्विन–कार्तिक) ऋतु में दही के सेवन से कफ पित्त के रोग हो सकते है।
- तेज बोलने (भाषण आदि) के बाद थके हुए भोजन सेवन से भंग हो सकता हैं।
- सूर्यास्त होने के बाद रात्रि में दही, मूली, खीरा, मट्ठा, जौ का सत्तू तिल से बने पदार्थ रोगकारक होते हैं ।
- प्रातःकाल केला, जामुन, गूलर, बेर, इमली, अदरक, अंकोल, चिरौजी, ताड़के फल या रस से बने पदार्थ, नारियल तथा तिल से बने पदार्थ रोगकारक हैं आयुर्वेद ने समस्त खाद्य, पेय चोष्य, भक्ष्य के योग्य पदार्थो में मधुर अम्ल, लवण, कटु तिक्त एवं कषाय नाकाम छः रसों को प्रामाणिक संधान खोज किया है उन रसों से मुख्य लाभ निम्नलिखित रूप से जानना चाहिए ।

- मधु रस से रक्त (खून) बढ़ता है। हेमन्त (अगहन + पौष मास) ऋतु में कुछ वनस्पतियों से मधु रस स्वतः पाया जाता है। घी नारियल आदि में विशेषतः पाया जाता है।
- अम्ल रस से मज्जा बढ़ता हैं। वर्षा (सावन+भादौ) ऋतु में कुछ वनस्पतियों से अम्ल रस स्वभावतः अधिक पाया जाता है। आंवला आदि में विशेष तौर पर पाया जाता है।
- लवण रस से – अस्थि की वृद्धि होती है। शरद (अश्विन+कार्तिक मास) ऋतु में कुछ वनस्पतियों में लवण रस स्वभावतः अधिकता होती है। सेंधा नमक में विशेषतः पाया जाता हैं।
- कटू रस से मांस की वृद्धि होती है। ग्रीष्म (ज्येष्ठ+आषाढ़) ऋतु में कुछ वनस्पतियों स्वाभाविक रूप में कटू रस की अधिकता होती है। अदरक में विशेषतः पाया जाता है।
- तिक्त रस से मेद (चर्बी) की वृद्धि होती है। शिशिर (माद्य+फल्गुन) ऋतु में तिक्त रस कुछ वनस्पतियों में स्वभावतः पाया जाता है। परवल में विशेषतः पाया जाता है।
- काषाय रस से शुष्क (वीर्य) बढ़ता है। (चैत्र+वैशाख) ऋतु में कुछ वनस्पतियों में काषाय रस अधिक मात्रा में पाया जाता है। विशेषकर हरीतकी (हरड़) में ।
- चूंकि शरीर में सभी धातुओं की निरन्तर वृद्धि होना आवश्यक है, अतः आयुर्वेद के अनुसार मधुर आदि सर्वसाभ्यासी समुचित मात्रा में होना मनुष्य के लिए आवश्यक है।
- ऋतुओं दोषों के प्रकोपः शमन को ध्यान में रखकर वैध के परामर्शानुसार अपना आहार ग्रहण करना चाहिए।
- आयुर्वेद में जीवन के सभी आधि–व्याधि तथा मानस दोषों को दूर करने के लिए पूरी चिन्ता की गयी है। अतः इसका उपदेश समझने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान, ज्ञानकार वैद्य का सम्पर्क, आयुर्वेद के विषयों से सम्बन्धित छोटी–छोटी पुस्तकें, पत्र–पत्रिकायें पढ़ते रहना चाहिए। अपने घर के आस पास में वनस्पतियों की पहचान रखना चाहिए। उनका गुण कर्म समझना चाहिए। सर रीति के प्रयोग करें स्वस्थ्य तथा निरोग जीवन व्यतीत करना चाहिए ।

वर्षा ऋतु में क्या खाये और क्यों:-

हिताचार मूलं जीवितम् अतिहार मूलश्च मृत्युः

जीवन का मूल हिताचार है, मृत्यु का मूल अहित आहार है हित आहार के सेवन से ही मनुष्य का पूर्ण आयुष्य जीवं शरद शत् का भोग कर सकता है। औषधियाँ किसी निश्चित सीमा तक रोगों को दूर कर सकती हैं। भाव प्रकाश में बताया गया है कि औषधियों के बिना भी रोग आहार से शान्त हो जाते हैं। पध्यापध्य का ध्यान बिना रखे हजारों औषधियों से भी रोग ठीक नहीं हो पाती हैं। आयुर्वेद की चिकित्सा शीत, ऊष्ण एवं वर्षाकाल के वातावरण पर निर्भर होने से आयुर्वेद में ऋतुचर्या एवं दिनचर्या का महत्वपूर्ण ढंग से विचार किया गया है। ऐलोपैथी में चिकित्सा करते समय ऋतुओं पर विचार नहीं किया जाता है। ऐलोपैथी में रोग प्रतिरोधक टीका लगाने का जो उद्देश्य अपनाया गया है आयुर्वेद में ऋतुचर्या और दिनचर्या के पालन से मनुष्य स्वस्थ्य जीवन बिता सकता है जो कि स्वास्थ्य संरक्षण प्रतिषेधात्मक चिकित्सा (प्रीवेन्ट क्योर) है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्षा ऋतु अत्यन्त ही निकृष्ट मानी गयी है जिस कारण स्वास्थ्य खराब होने तथा रोग होने की सम्भावना प्रबल होती है। अधिकांश विकार आहार विहार की असावधानी एवं असंतुलन के कारण होते हैं। वर्षा ऋतु में आकाश मेघाछन्न रहने से धूप की उपलब्धता कम होने के कारण मकानों में सीलन होने से घरों में रखे हुए खाद्य पदार्थ शीघ्र संक्रमित होकर इनमें विभिन्न प्रकार के कृमि पैदा हो जाते है। वैज्ञानिक अनुसंधान ने पृष्टि की है कि वर्षा ऋतु में पकाकर रखे पदार्थो में सामान्यतः 10 से 20 घण्टों में कृमि उत्पन्न हो जाते है जिस कारण भक्ष्य पदार्थो से बदबू आने लगती है, जो कि अखाद्य हो जाते हैं जो लोग लोभ अथवा लोलुपता वश जिव्हा के वंशीभूत होकर ऐसे पदार्थो का भक्षण करते हैं तो पाचन सम्बन्धी विकृति का होना स्वभाविक है जिससे अजीर्ण, मन्दाग्नि, अतिसार, विसूचिका, जी मितलाना, उल्टी होना, ज्वर विकार उत्पन्न हो जाते है। जिस कारण वर्षा ऋतु में मनुष्यों का बल स्वभावतः क्षीण हो जाता है।

प्रशस्त भोजन पदार्थः-

1. दूध में मुन्क्का पकाकर बिना शक्कर मिलाये दूध पीना चाहिए।
2. हफ्ते में एक बार एरण्ड तेल छोटी चार–पांच चम्मच दूध के साथ लेवें यह मल शोधक आंव–पेचिश, गैसनाशक, शारीरिक वेदना में उपयोगी हैं । वर्षा ऋतु में अवश्य लेना चाहिए।
3. ईसबगोल एक छोटा चम्मच दूध के साथ रात्रि में सोते समय लेना चाहिए यह जीवाणुजन्य पेचिस को बाहर निकाल कर बन्द करता है।
4. एक निम्बू का रस, शहद के छोटे चम्मच को पानी में मिश्रित कर प्रातः काल पीना चाहिए।
5. भोजन के बाद 25 ग्राम गुड़ चूसकर खाना चाहिए। यह एसीडिटी में विशेष लाभ करता है। उदरवायु शान्त होती है। कच्चे आलू के रस में नींबू डालकर पीने से गैस में लाभ होता है।
6. दूध में पीपली 4 नग पकाकर पीना चाहिए। पीपली साबुत भी खा लेनी चाहिए।
7. सरसों के तेल में रूई का फोहा भिगोकर नाभि पर रखने से गैस कम बनती है।
8. हल्दी 2 ग्राम+सेंधानमक 2 ग्राम एक साथ लेने से पेट की गैस आसानी से निकलती है।
9. उल्टी होने पर पेट पर राई का लेप करने से उल्टियां रूक जाती है। राई 3 ग्राम जल के साथ सेवन करने से अजीर्ण समाप्त होता है। आंव पेचिस में भिण्डी की सब्जी खाना लाभदायक है।
10. बेर रक्तातिसार और आंतो के घाव ठीक करता है। बैर खाने से भूख बढ़ती है।
11. लौंग के सेवन से गैस निकलती है।

निद्रा

मनुष्य मात्र के स्वास्थ्य, संरक्षण एवं दीर्घ जीवन के लिए निद्रा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसे जगद्दात्री उचित ही कहा गया है, क्योंकि इस प्रक्रिया द्वारा शारीरिक श्रम एवं मानसिक तनाव तथा धातुक्षय जनित की क्षति की पूर्ति से सहायता मिलती है।

निद्रा पर निर्देशः-

1. पूर्व या दक्षिण दिशा में सिर रखकर सोना चाहिए।
2. शयन कक्ष अत्यन्त स्वच्छ एवं खटमल रहित होना चाहिए ।
3. शयन कक्ष वायु के आवेगों से मुक्त होना चाहिए।
4. सोने के समय मन सांसारिक गतिविधियों एवं चिन्ताओं से मुक्त रहना चाहिए।
5. रात में देर से सोने से स्वास्थ्य खराब होता है।
6. शरीर की क्षतिपूर्ति के लिए 24 घण्टे में कम से कम छः घण्टे सोना अत्यावश्यक है।
7. यथासंभव दिन में सोने से बचना चाहिए। तथापि यदि कोई रात में जगता है तो दिन में कुछ समय के लिए सो सकता है। गर्मी के दिनों में सोना वर्चित नहीं है। परन्तु जाड़ों के दिनों में सोने से कफ बढ़ता है, जिससे श्वसन एवं पाचन विचार होते है।
8. सिर, तलवों एवं हथेली पर सोने से पूर्व मालिश करना वांछनीय है। मालिश से सपने नियंत्रित हो सकते है ।

अधरणीय वेग (न रोके जाने योग्य वेग):-

- ☞ मूत्र रोकने से मूत्र कष्ट, मूत्राशय क्रियाहीनता एवं शोध ।
- ☞ पुरीष रोकने से उदरशूल, अफरा, अजीर्ण, पेट में वायु सिर दर्द, पेट में व्रण ।
- ☞ अपानवायु रोकने से उदरशूल, अफारा, अजीर्ण हृदयरोग कब्ज या अतिसार।
- ☞ शुक्रक्षरण रोकने से पथरी, अण्डकोष में पीड़ा एवं मैथुन कष्ट।
- ☞ वमन रोकने से नाशा शोध, जीर्ण, प्रतिश्याम, शिर : पीनस एवं श्वसन संस्थान में विकार।
- ☞ उद्गार (डकार) रोकने से हिचकी, वक्षशूल, कास, अरूचि एवं मंदाग्नि ।

- जम्हाई रोकने से पोषण विकार एवं दुबर्लता, शरीर की प्रतिरोध एवं वयाधि क्षता का ह्रास, क्षुध, शूल एवं शोध ।
- आंसू रोकने से घुटन, श्वसन विकार, हृदय एवं मृत्यु । निद्रा रोकने से अनिद्रा, मानसिक रोग, पाचन विकार एवं ज्ञानेन्द्रियों के रोग।

आपकी रसोई

परिवार के प्रत्येक सदस्य का स्वास्थ्य उस घर की महिला पर निर्भर करता है, क्योंकि उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए रसोई परिवार का औषधालय है। भोजन बनाने एवं परोसने जा रही महिला की मनोभावनाओं का भोजन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता हैं। अतः प्रत्येक महिला का परम कर्त्तव्य है कि भोजन बनाते समय उच्च एवं पवित्र विचार मन में रखें और निश्चित समय पर ही भोजन तैयार करें। परिवार को स्नेह के साथ भोजन करायें। शुद्ध एवं सात्विक भोजन स्वास्थ्य को परिपुष्ट रखता है, क्योंकि हमारा भोजन ही औषधि है।

ऋतु अनुसार एवं जीवित भोजन यानी के भोजन को अधिक तला–भुना ना किया जाये खटाई, लाल मिर्च एवं तामसिक भोजन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रातःकाल अंकुरित अनाज एवं दालों का प्रयोग करना चाहिए। भोजन संबंधी इन नियमों का प्रयोग महिला को कठोरता से करना चाहिए।

हितकारी भोजन पदार्थो का संयोग

1. आम एवं खरबूजे के साथ दूध का सेवन लाभकारी है।
2. खरबूजे के साथ शक्कर, बूरा या खाण्ड के शर्बत का सेवन लाभकारी है।
3. केला खाने के बाद छोटी इलायची का सेवन लाभकारी है।
4. चावल के साथ नारियल की गिरी (गोला) का सेवन लाभकारी है।
5. मूली के साथ मूली के पत्ते एवं डंठल का सेवन लाभकारी है।
6. गाजर के साथ मेथी साग का सेवन लाभकारी है।
7. इमली के साथ गुड़ का सेवन लाभकारी है। मक्का के साथ मट्ठा का सेवन लाभकारी है।
8. अमरूद खाने के बाद सौंफ का सेवन लाभकारी है। भोजन खाने के बाद अनार का

सेवन लाभकारी है।

9. दही के साथ मूंग का शूप, घी एवं शक्कर, शहद या आंवला चूर्ण मिलाकर सेवन करना लाभकारी है।

भोजन सेवन संबंधी सामान्य नियम

1. भोजन एकान्त में हाथ पैर धोकर प्रसन्नचित्त व शान्तिपूर्वक करना चाहिए।
2. एक भोजन से दूसरे भोजन के बीच कम से कम 3 घण्टे का अन्तर होना चाहिए।
3. भोजन को चबाकर यानी एक ग्रास को 32 बार चबाकर खाना चाहिए।
4. पानी भोजन से एक घण्टा पहले या एक घण्टा बाद पीना चाहिए।
5. भोजन के तुरन्त बाद पेशाब (मूत्र) करना चाहिए।
6. दोपहर भोजन के बाद लेटना चाहिए। पीठ के बल लेटकर 7 श्वास, दांयी करवट लेकर 16 श्वास तथा बांयी करवट लेकर 23 श्वास लेने चाहिए।
7. सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना चाहिए।
8. किसी भी भोज्य पदार्थ के बाद कुल्ला अवश्य करना चाहिए।
9. शारीरिक व मानसिक थकावट होने पर, क्रोध, भय, चिन्ता शोक एवं परेशानी होने पर भोजन नहीं करना चाहिए।

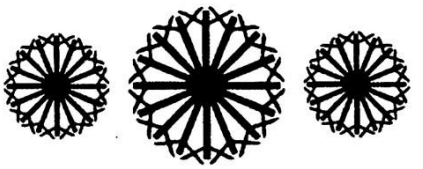

एक्यूप्रेशर का इतिहास

शरीर के निश्चित बिन्दुओं के द्वारा आन्तरिक अवयवों पर प्रभाव उत्पन्न करने के लिए हमारे ऋषि मुनियों ने प्राचीन काल में जो सरल पद्वति निकाली है। उनमें एक्यूप्रेशर सबसे सरल है।

मानव शरीर एक मशीन है यह सभी जानते हैं कि मशीन के अवयव (कलपूर्जे) किसी भी वक्त अपना काम बन्द कर सकते हैं एक भी कलपुर्जा यदि अपना कार्य बन्द करता है या अपनी क्रिया मन्द गति से या तीव्र गति से करता है तो मशीन रूपी शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है। इस संतुलन को बनाये रखने के लिए एवं शरीर की बीमारियों के उपचार के लिए निरन्तर अध्ययन किया गया है।

हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि मनुष्य ने सबसे पहले अपना उपचार एक्यूप्रेशर पद्वति से ही किया है। यह बात अलग है कि पद्वति का नामकरण बाद में हुआ, यह आप जानते है कि जब शरीर के किसी भाग में दर्द होता हैं आप उस हिस्से को सबसे पहले अपने हाथ से दबाते है और आराम महसूस करते है। पेट में दर्द हो या सिर में दर्द हो, आंख में दर्द हो या पांव में दर्द हो तो हम अपने ही हाथ से उस भाग को दबाते है। यह दबाने की बात हमें किसी ने नहीं बतायी हैं।

ईश्वर ने हमें ज्ञान दिया है कि जिस जगह दर्द हो उस भाग को दबाने से राहत मिलेगी। हमारे ऋषि मुनियों के ध्यान में यह बात आ गयी कि शरीर के निश्चित भाग पर तीक्ष्ण पत्थर के द्वारा दबाव डालने से युद्ध में घायल होने वाले सैनिकों को कभी–कभी ऐसा अनुभव होता था कि शरीर के किसी एक भाग में तीर या गदा लगने से किसी अन्य भाग की वर्षो पुरानी बीमारी दूर हो जाती थी और दर्द मिट जाता था। इस विषय पर व्यवस्थित अध्ययन शुरू हो गया और नये–नये बिन्दुओ का आविष्कार होता चला गया। इस चिकित्सा पद्वति को ही एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्वति का नाम दिया गया।

आजकल दुनिया के प्रत्येक प्रतिष्ठित विश्व विद्यालयों में एक्यूप्रेशर की वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा दी जा रही है, यह बात इसके महत्व की स्वीकृति का प्रमाण है।

अब तो अर्न्तराष्ट्रीय आरोग्य संस्थान (W.H.O.) भी एक्यूप्रेशर की ओर ध्यान दे रहा है। यह संस्थान निम्नलिखित रोगों में एक्यूप्रेशर को आजमाने की सिफारिश करता है:– तीव्र साइन्युसाइटिस, सर्दी, टॉन्सिल, दमा, आँखों का दर्द, दाँतों का दर्द, हिचकी, वायु गोला, सिर दर्द, माईग्रेन अनिद्रा, लकवा, साइटिका, पीठ और कमर का दर्द आदि।

एक्यूप्रेशर का उत्पत्ति (विज्ञान)

ओ३म्

एक्यूप्रेशर के आधार पर हमारा जीवन शरीर स्थित जीव विद्युत शक्ति पर निर्भर करता है। इस शक्ति के कारण हम हिल डुल सकते है और मस्तिक से चिन्तन कर सकते है। इस शक्ति को हम प्राण ऊर्जा कहते है। यह शक्ति दो प्रकार के बलों से निष्पन्न होती है – पिन और यांग। पिन ऋण बल है जबकि यांग धन बल है। शरीर में इन दोनों बलों में मेल जोल संवाद और संतुलन हो तो मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। जब शरीर में एक बल अधिक मात्रा में दूसरा बल कम मात्रा में प्रवाहित होता है। तब रोगों का प्रादुर्भाव होता है। ये बल शरीर में विशेष मार्गो से होकर बहते हैं। इन मार्गो को हम मेरिडियन (Meridian) कहा जाता है।

शरीर के सभी अंगों की कार्य करने की क्षमता उस अंग को मिलने वाले रक्त पर निर्भर करती है। हर अंग को प्रयाप्त रक्त मिलने पर सभी अंग अपना–अपना कार्य सुचारू रूप से करते हैं। फलस्वरूप शरीर स्वस्थ (निरोग) रहता है। अगर किसी कारणवश शरीर के किसी अंग को रक्त की प्राप्ति ठीक प्रकार से नहीं होती है, तो वह अंग पूर्ण क्षमता से अपना कार्य नहीं करेगा। रक्त प्रवाह सामान्य होने पर ही शरीर स्वस्थ रहता है।

एक्यूप्रेशर (दबाव विद्या) द्वारा चेतना को जागृत करके ज्ञानतन्तु को सचेत किया जाता है।

हमारा शरीर पंचतत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से बना है और इनका संचान शरीर की जीव विद्युत करती है। यदि यह जीव विद्युत किसी केन्द्र से लीक करती है और वहां प्रेशर करने से पीड़ा महसूस हो, तो उस केन्द्र से सम्बन्धित अंग में खराबी होगी और उस अंग पर प्रेशर देने से लीकेज बंद हो जाती है और शरीर स्वस्थ हो जायेगा। एक्यूप्रेशर पद्वति के अनुसार शरीर व मन को अलग–अलग नहीं करकें वरन् एक अभिन्न ईकाई माना गया है।

ऊर्जा सिद्वान्त (Energy Theory)

एक्यूप्रेशर को ठीक से समझने के लिए पहले ऊर्जा सिद्वान्त को समझना बहुत आवश्यक है। शरीर का पूर्ण संचालन ऊर्जा की क्रियाशीलता (Energy Motion) द्वारा होता है। इस ऊर्जा को प्राण कहते है। यह जीवन का स्रोत (Life Force) है। यह समस्त

ऊर्जाओं में श्रेष्ठ है। इस ऊर्जा का न तो निर्माण किया जा सकता है और न ही इसे नष्ट किया जा सकता है। इसका न कोई अन्त है ना कोई प्रारम्भ है। इसका प्रवाह सर्पिला कार (Spiral) है। इसका जहां अन्त है वही से इसका आरम्भ है यही ऊर्जा–गतिमान सिद्वान्त कहलाता है।

एक्यूप्रेशर के प्रभाव

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में शरीर के मुख्य बिन्दुओं पर आरोग्यदायक एवं रोग नाशक प्रभाव उत्पन्न होता है। प्रभाव निम्नानुसार है:–

1. **दर्द का शमन** :– दर्द का शमन एक्यूप्रेशर का सर्वाधिक दृश्यमान प्रभाव है। इस प्रभाव का उपयोग शरीर में संधिस्थलों का दर्द, सिर का दर्द, दांतों का दर्द, कमर का दर्द, पैर की मोच आदि में बहुत ही सरल एवं लाभदायक प्रयोग है।
2. जीवन शक्ति एवं प्रतिकारक शक्ति में वृद्धि एक्यूप्रेशर उपचार प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। इसमें शरीर के अन्दर रोग प्रतिरोधक शक्ति को प्रबल लाभ होता है। इसके प्रभाव से श्वसन क्रिया, हृदय की धड़कने, पाचन क्रिया, रक्तचाप, शरीर का तापमान आदि-सामान्य बनते है। रक्त के लाल कण, श्वेतकण आदि की मात्रा बढ़ती है। रक्त में कालेस्ट्राल की मात्रा घटती है।
3. **मानसिक प्रभाव**:– एक्यूप्रेशर चिकित्सा नियमित रूप से लेने वाले व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य में चमत्कारिक सुधार होता है।
4. **स्नायुओं पर प्रभाव**:– एक्यूप्रेशर स्नायु को उत्तेजित करता है और शक्ति प्रदान करता है। इस प्रभाव का उपयोग लकवा, पोलियो, आदि रोगों में किया जाता है। इस पद्वति का आविष्कार प्राचीनकाल में हुआ था। इसके सिद्वान्तानुसार हाथ पैर के पंजे दर्पण के समान है। जिसमें शरीर के आन्तरिक अवयव (बिन्दु) प्रतिबिम्बित होते है।

इस प्रकार शरीर के अवयवों का हाथ पैर के पंजों के साथ प्रत्यक्ष संबंध है। जब शरीर के किसी भाग में दर्द होता है उस भाग के निश्चित बिन्दुओं को विधिवत दबाने से विद्युत चुम्बकीय तरगें उत्पन्न होती है। ये तरंगे संबंधित बिन्दुओं तक पहुँचकर रोग का निवारण करती है।

स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए विशेषज्ञ इन बिन्दुओं में से प्रत्येक बिन्दु को प्रतिदिन दो–तीन मिनट तक दबाने की सलाह देते है। उंगली तथा अग्रभाग से अथवा खास प्रकार के साधन से इन बिन्दुओं को दबाया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर शरीर पर स्थित कुछ बिन्दुओं को दबाकर उपचार करने की एक सरल और सादगीपूर्ण पद्वति है। इस प्रकार से सरल उपचार पद्वति सचमुच प्रभावोत्पादक हो सकती है यदि व्यक्ति श्रृद्धापूर्वक प्रयत्न करता है तो एक्यूप्रेशर के द्वारा स्वास्थ्य रक्षा हो सकती है। कई बार अत्यन्त सादगीपूर्ण उपचार सबसे अच्छा साबित होता है।

एक्युप्रेशर के लाभः-

- ☞ यह अत्यन्त सरल एवं सादी फिर भी प्रभावशाली चिकित्सा पद्वति है।
- ☞ यह चिकित्सा सभी लोग अपने घर पर ही कर सकते है ।
- ☞ यह उपचार आवश्यकता के अनुसार बार–बार लिया जा सकता है।
- ☞ इस उपचार के लाभ प्राप्त करने के लिए एक भी पैसा खर्च नहीं करना पड़ता
- ☞ त्वचा में स्फूर्ति पैदा होती है।
- ☞ शरीर में आवश्यक तत्वों का प्रसार होता है एवं मांसपेशी के तंतुओं में लचक पैदा होती है।
- ☞ शरीर में प्रतिरोधक शक्ति बनी रहती है।
- ☞ स्वभाव में परिवर्तन होता है।
- ☞ आपातकालीन स्थिति में (जैसे हृदय रोग का आक्रमण होने पर) एक्यूप्रेशर द्वारा प्राथमिक उपचार हो सकता है।

ऐसे समय पर एक्युप्रेशर खतरे को टालने में सहायक सिद्ध होता है। हृदय शूल या दमा का आक्रमण होने पर डॉक्टर के आने तक प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहना उचित नहीं है। ऐसी विषम परिस्थितियों में एक्युप्रेशर का तात्कालिक प्रभावी उपचार उपयोगी सिद्ध होता है।

एक्युप्रेशर का एक दूसरा महत्वपूर्ण लाभ है स्पर्श द्वारा रोग निवारण की परम्परा का पुनः स्थापना । वर्तमान में रोगी और डाक्टर के बीच का आत्मीयता पूर्ण संबंध अदृश्य होता जा रहा है। प्राचीनकाल में डॉक्टर अपने प्रत्येक रोगी के साथ व्यक्तिगत संबंध रखते थे। किन्तु आजकल नये–नये वैद्यकीय यंत्रों के मायाजाल में मानवीय सम्बन्धों का दम घुटने लगा है। डाक्टर और रोगी के बीच मित्रतापूर्ण निकटतम संबंध हो तो रोग निवारण की क्रिया सचमुच अनोखी साबित होती है। एक्युप्रेशर चिकित्सा रोगी के स्पर्श से उसकी भौतिक स्थिति के उपरान्त ओर भी बहुत कुछ जान सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा हेतु आवश्यक निर्देश

- साफ, हवादार, शान्त व अनुकूल वातावरण होना चाहिए।
- उपचार के समय रोगी को सही स्थिति में रखने के बाद प्रेशर दें ।
- उपचार के समय रोगी व चिकित्सक दोनों आरामदायक स्थिति में तनाव रहित हो।
- चिकित्सक को शान्तचित्त, लगन, सेवाभाव, सुविचार, रोगमुक्त व सात्विक आहार–विहार वाला होना चाहिए।
- रोगी में जीवन के प्रति अच्छी भावना पैदा करें ।
- रोगी को बिठाकर अथवा लिटाकर चिकित्सा करनी चाहिए।
- एक्युप्रेशर पद्वति में प्रेशर के साथ–साथ पौष्टिक भोजन व हल्का व्यायाम का भी ध्यान रखें ।
- भोजन व चिकित्सा में कम से कम एक घण्टे का अन्तर रखें ।
- एक दिन में दो बार उपचार आठ घण्टे के अन्तराल से किया जा सकता है।
- चिकित्सक को अपने हाथ के नाखुन व्यवस्थित रखने चाहिए ।
- उपचार करने से पहले रोगी को तनावमुक्त करें ।
- बायें हाथ–पैर में पहले तथा दायें में बाद में चिकित्सा करें ।
- रोगी की शारीरिक क्षमता को देखकर सहन करने, लायक दबाव देना चाहिए।
- एक प्वाइंट पर दबाव सात सैकेंड से एक मिनट तक दिया जा सकता है।
- बिन्दुओं पर दबाव देने के बाद थोड़ा झटका देकर छोड़ना चाहिए इससे खून का दौरा बढ़ता है।
- एक दम भूखे पेट रोगी को चिकित्सा न दें ।
- रोगी के दोनों पॉव अच्छी तरह पानी से धुले हुए व साफ हो ।
- शुरूआत में रोगी को शारीरिक दर्द से पीड़ा ज्यादा होती है लेकिन धीरे–धीरे यह पीड़ा कम हो जायेगी ऐसा रोगी को भी आश्वासन दें ।

पैरों के ऊपरी भाग पर विभिन्न प्रतिबिम्ब-केन्द्र
(दोनों पैरों पर समान केन्द्र)

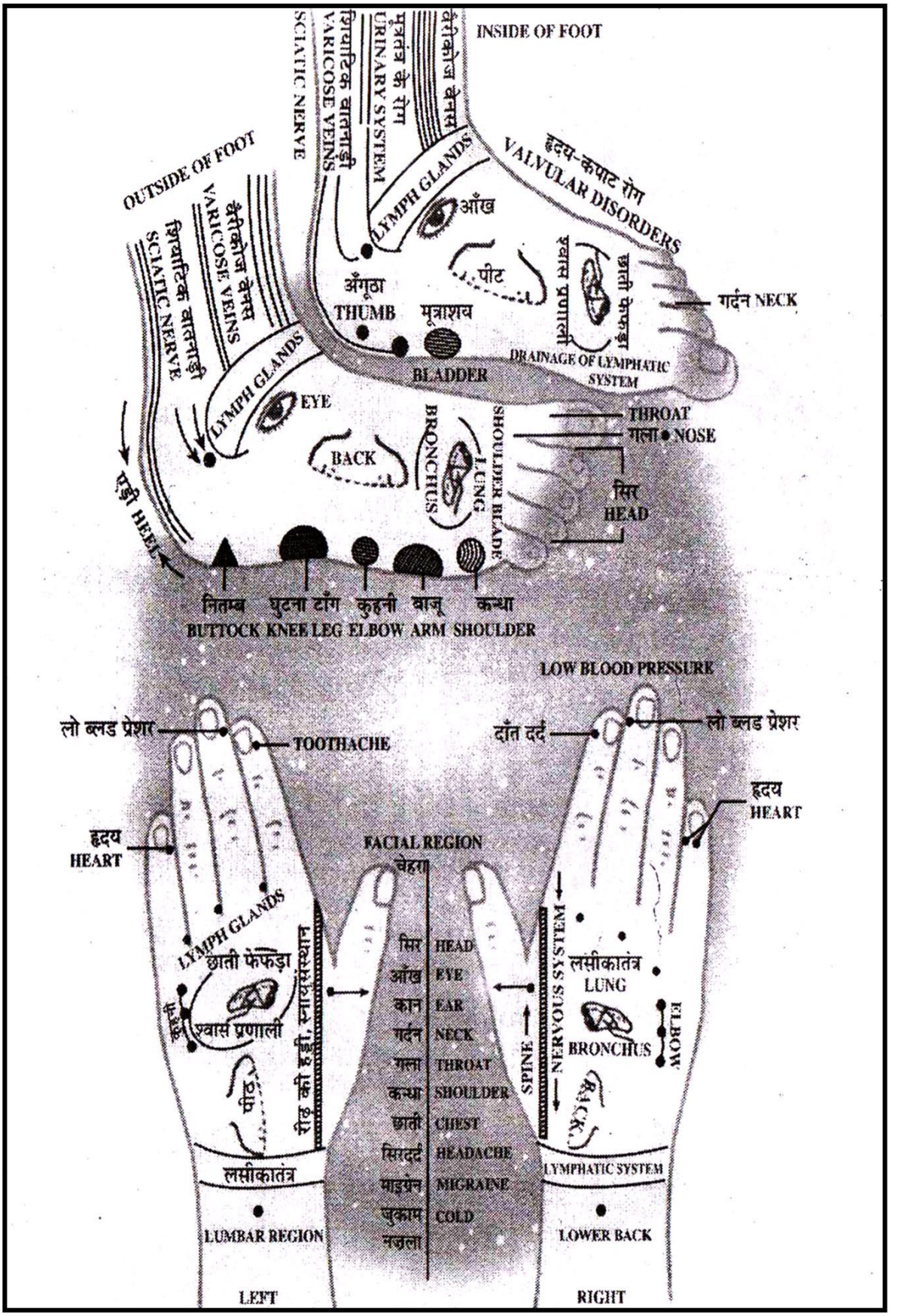

हाथों के ऊपरी भाग पर विभिन्न प्रतिबिम्ब-केन्द्र दोनों हाथों पर समान केन्द्र

जिगर, हृदय तथा तिल्ली के प्रतिबिम्ब-केन्द्रों के अतिरिक्त दोनों पैरों में एक्यूप्रेशर रोगोपचार-केन्द्र समान

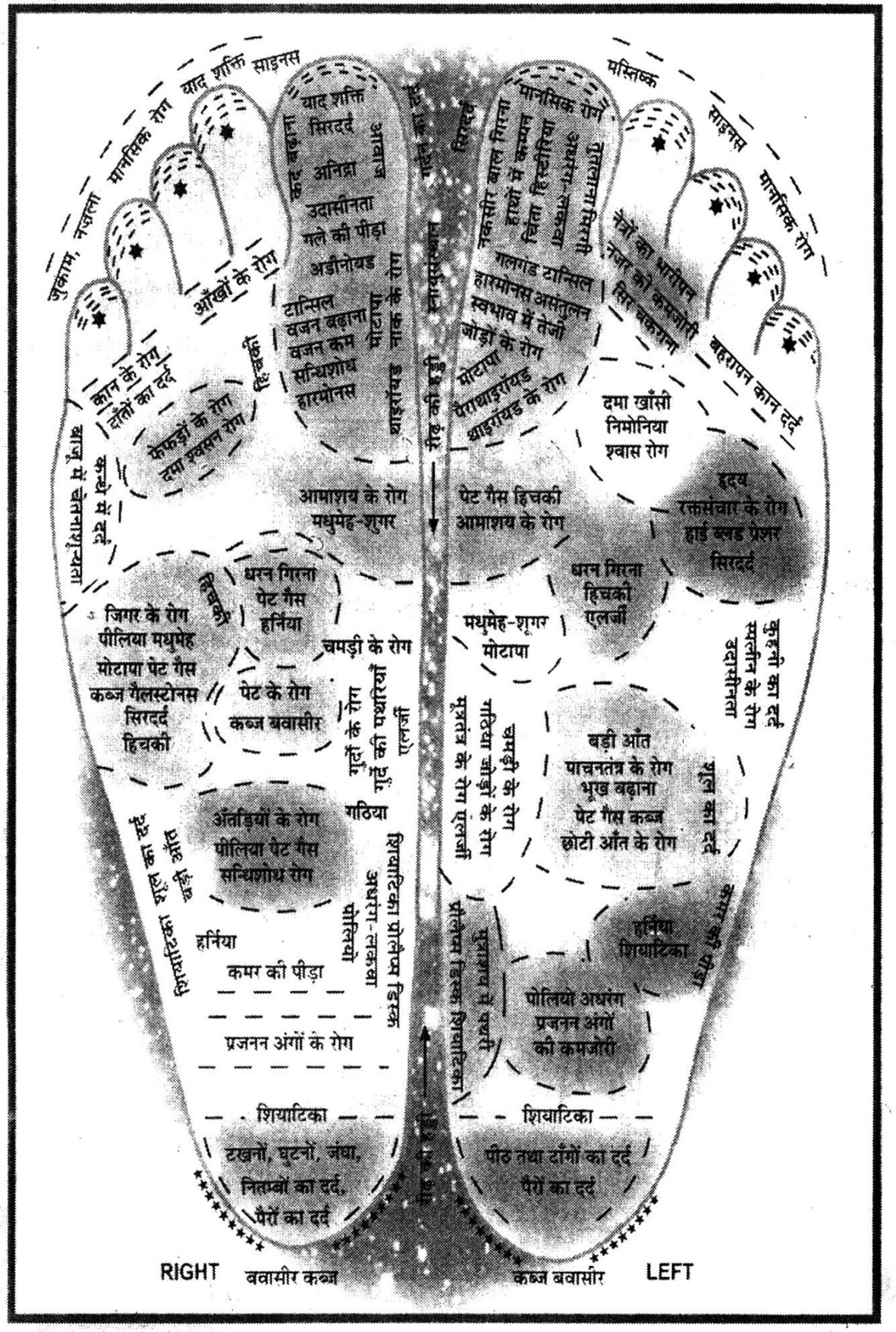

पैरों में स्थित मुख्य एक्यूप्रेशर प्रतिबिम्ब-केन्द्र

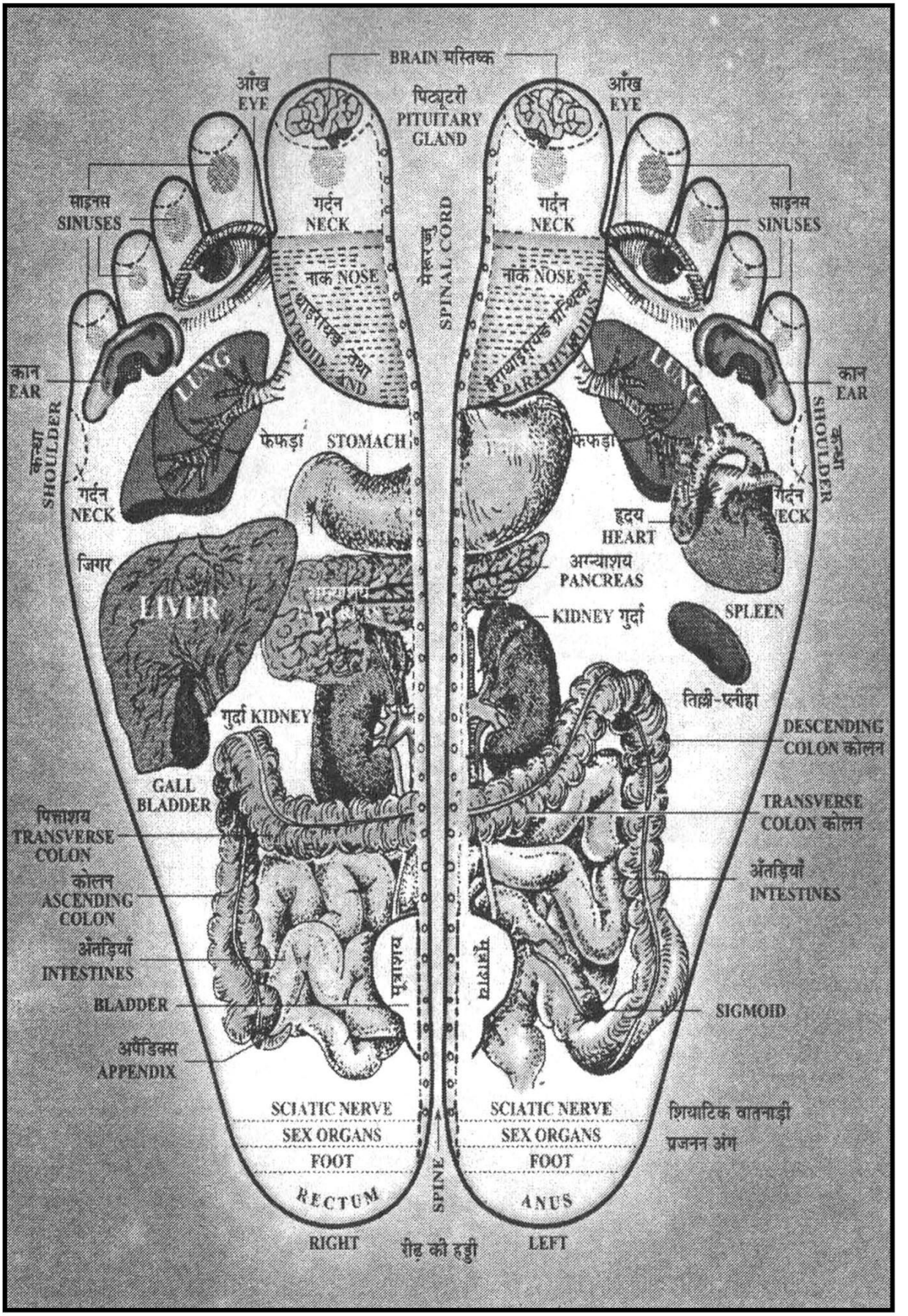

हाथों में स्थित मुख्य एक्यूप्रेशर प्रतिबिम्ब-केन्द्र

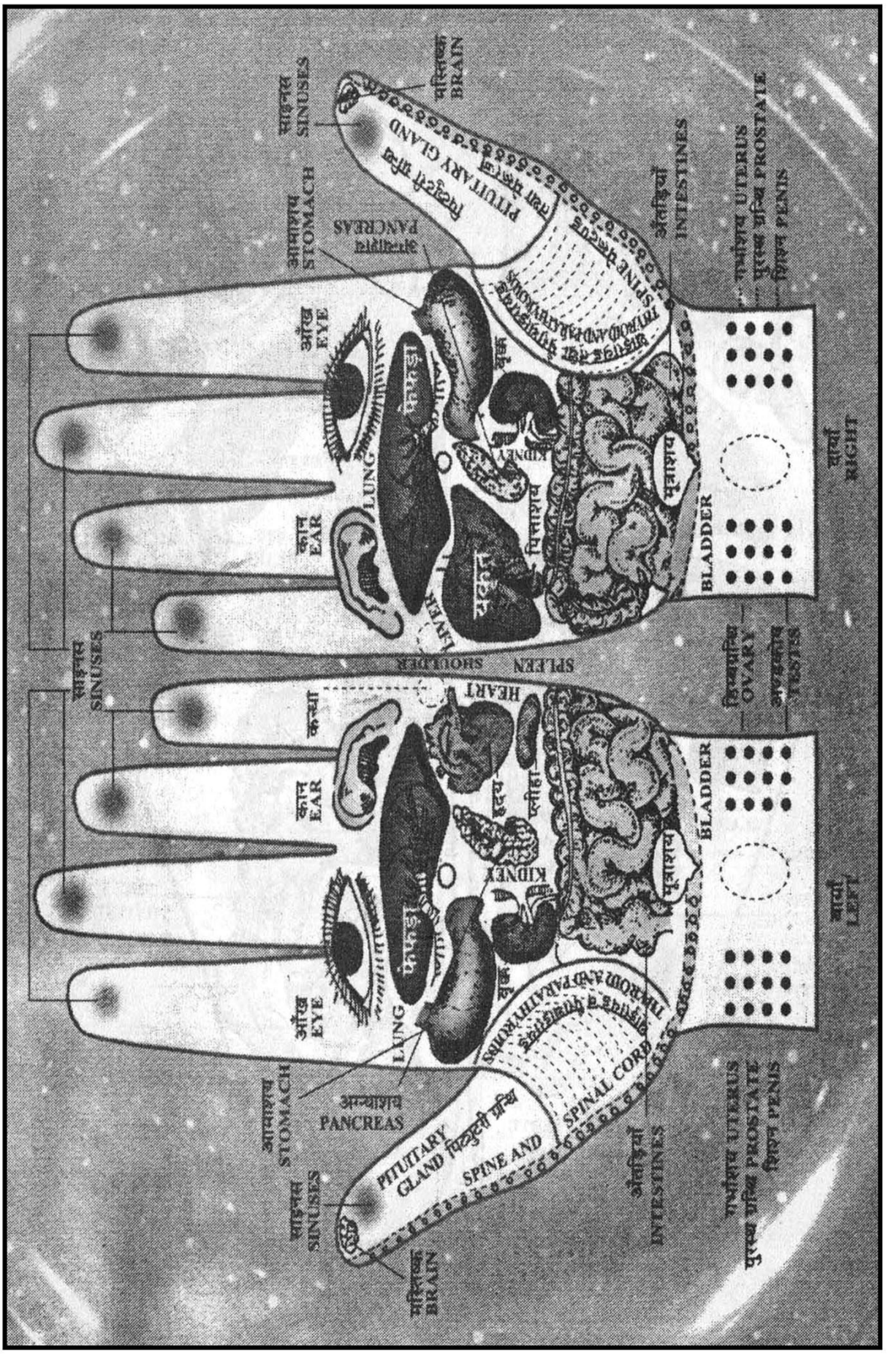

अन्तःस्रावी रसोत्पादक नलिकाहीन ग्रन्थियों (Endocrine System) की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र

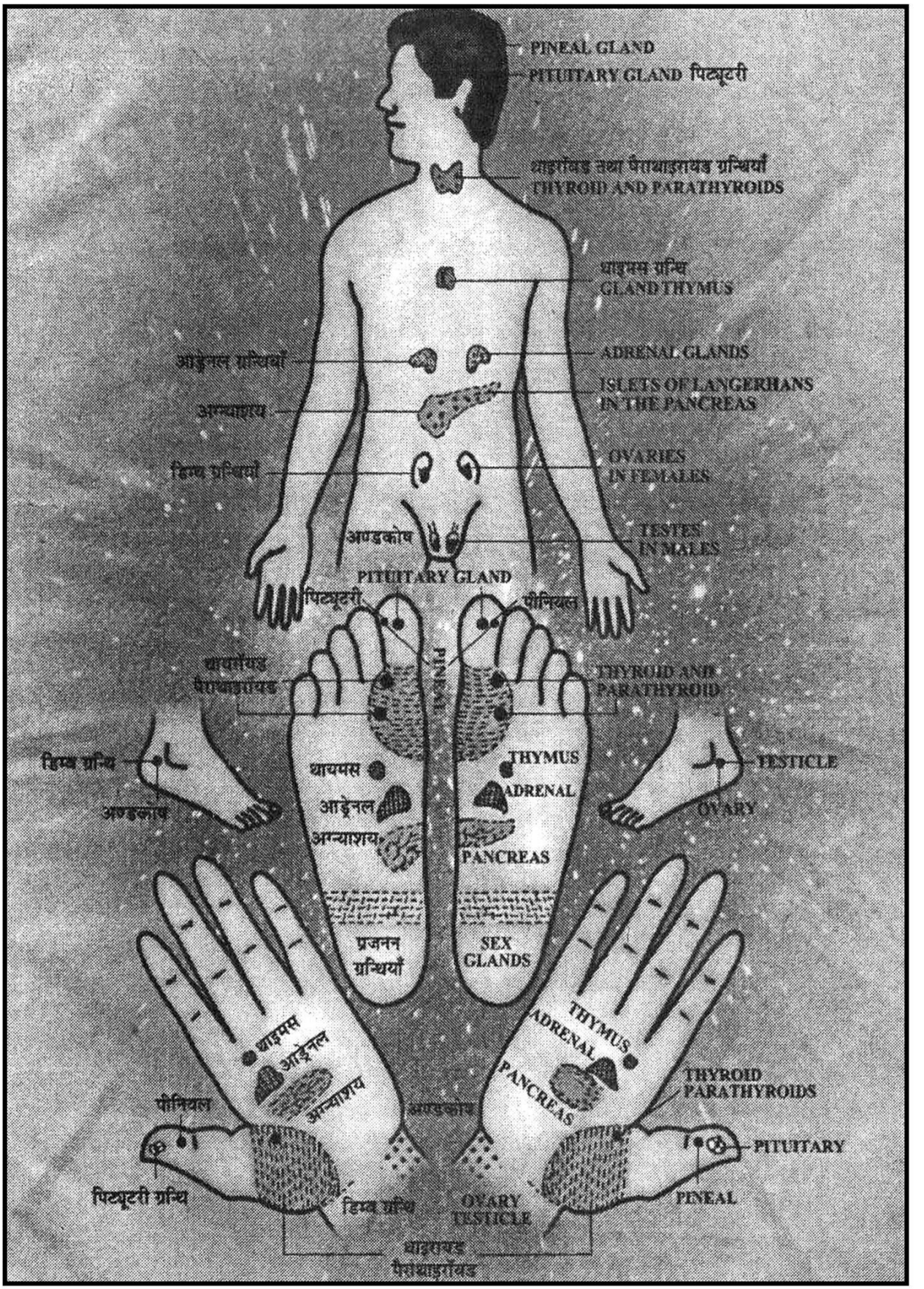

मस्तिष्क, स्नायु-संस्थान, रीढ़ की हड्डी, साइनस, आवाज, आँख, कान, गर्दन, गला, बगल, कन्धा, नितम्ब, घुटना तथा टाँग-सम्बन्धी, पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र

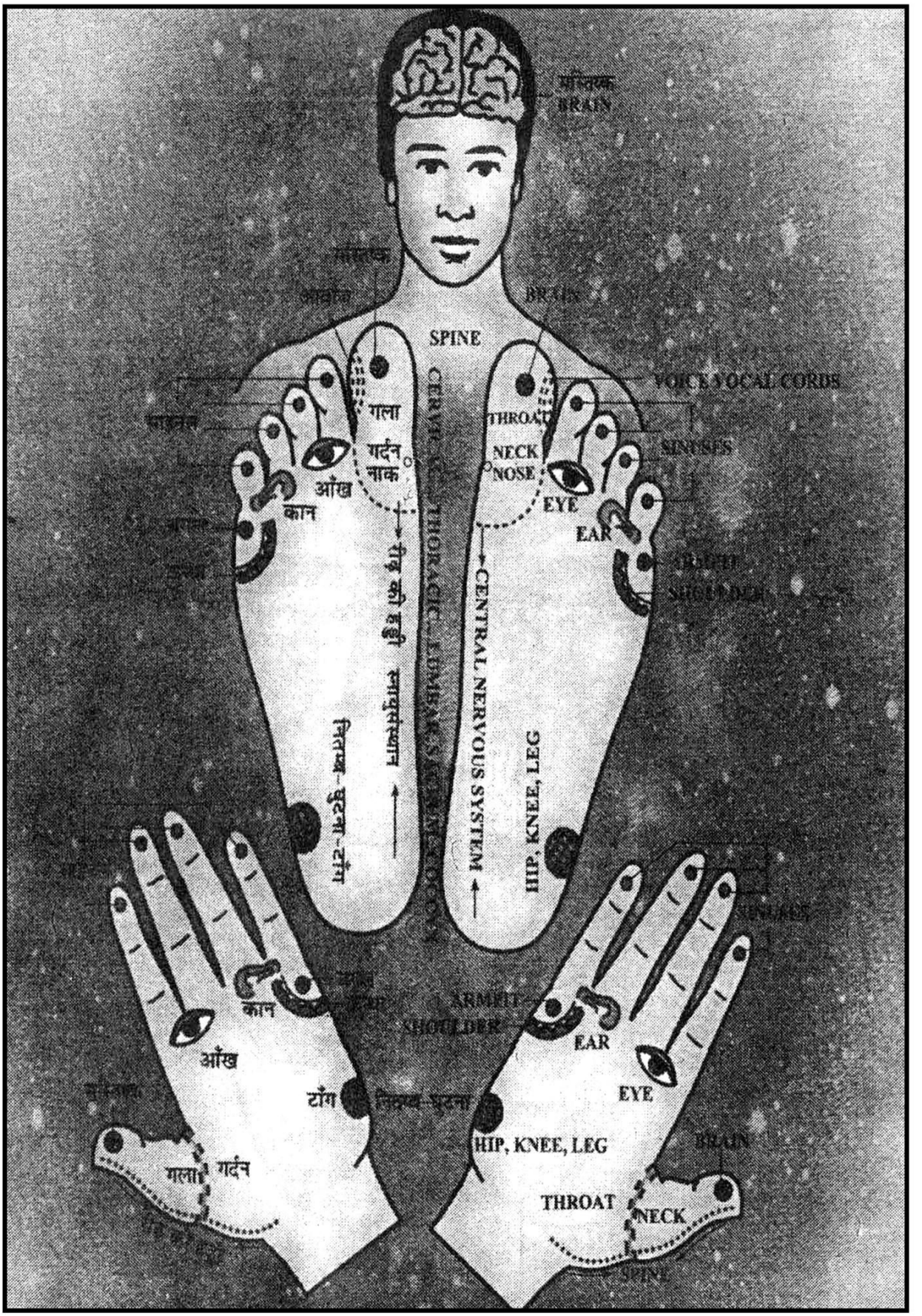

मन का कायाकल्प

स्वभाव को बदला जा सकता है, इतना रूपान्तरण किया जा सकता है कि आदमी का पूरा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। अनेक घटनाएं है, उदाहरण हैं। अनेक डाकू संत बन गए और अनेक संत डाकू बन गए। केवल बुरा स्वभाव ही नहीं बदलता, अच्छा स्वभाव भी बदलता है। दोनों में परिवर्तन होता है। परिवर्तन क्यों होता है, इस पर भी हमें विचार कर लेना चाहिए।

परिवर्तन का एक कारण है – भोजन । जब भोजन असंतुलित होता है तब आदतें बिगड़ जाती हैं। एक आदमी बहुत चिड़चिड़े स्वभाव का है। मनोचिकित्सक चिकित्सा से पूर्व उसके भोजन पर ध्यान देगा। वह जानता है कि जब भोजन में विटामिन 'ए' की कमी होती है तब स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। पोषक तत्वों का संतुलन नहीं होता है तो स्वभाव बदल जाता है। भोजन का असंतुलन, पोषक तत्वों की कमी स्वभाव–परिवर्तन का एक कारण है।

भोजन के परिवर्तन से भी स्वभाव बदल जाता है। एक कहानी है – एक साधु किसी घर में ठहरा । उसने वहां भोजन किया। कुछ ही समय पश्चात् उसकी दृष्टि अलमारी में पड़े हार पर गई। उसके मन में हार को चुराने की भावना जागी। उसने हार अपने पास रख लिया। अनेक विकृत विचार उसके मन में आते रहे। अचानक ही उसे वमन हुआ, खाया हुआ सारा भोजन निकल गया। उसे ज्ञान हुआ – मैंने चोरी कर कितना बड़ा पाप कर डाला। उसने तत्काल हार को मूल स्थान पर रख दिया उसका मन अनुताप और पश्चाताप से भर उठा ।

भोजन उस चोरी का कारण बना। भोजन निकला और भाव बदल गया । शास्त्रों में कहा गया है – जैसा खाये अन्न, वैसा हो जाये मन ।

रंग और स्वभाव

एक क्रोधी व्यक्ति यदि सूर्यरश्मि – चिकित्सक के पास जाएगा तो वह सबसे पहले इस बात पर ध्यान देगा कि इस व्यक्ति में किस रंग की कमी हुई है, जिससे इसमें क्रोध बढ़ा है। वह विश्लेषण करके जान लेगा कि इसमें नीले रंग की कमी हुई है या लाल रंग की मात्रा बढ़ी है, जिस कारण से क्रोध बढ़ा है। वह चिकित्सक लाल रंग को घटाता है, नीले रंग को बढ़ाता है और उस व्यक्ति का क्रोध कम हो जाता है। रंग–चिकित्सा (कलर थेरेपी) में दो रंग गर्म माने जाते हैं – लाल और पीला। दो रंग ठंडे माने जाते है–नीला (ब्लू) और हरा।

आयुर्वेद :- स्वभाव परिवर्तन की प्रक्रिया

आयुर्वेद में कहा गया – जब व्यक्ति में पित्त का प्रकोप होता है तब क्रोध का प्रकोप बढ़ जाता है। कफ का प्रकोप होता है तो लाभ बढ़ जाता है अपान वायु दूषित होती है तो भी क्रोध बढ़ जाता है। क्रोधी व्यक्ति को पित्तशामक औषधि का सेवन कराया जाता है तो क्रोध की मात्रा कम हो जाती है। लोभी होना भी एक बीमारी है। बीमार व्यक्ति को यदि कफ–शामक औषधि दी जाती है तो उसमें लोभ की वृत्ति कम हो जाती है वायुशामक औषधियों से कामवासना शांत होती है। एक आदमी को काम–वासना अधिक सताती है। सोचता है, यह सब उसके कर्म का उदय है किन्तु उसमें केवल कर्म का ही उदय नहीं, शरीर के रसायन का भी उसमें योग है। इस बात को समझ लेने पर इस आदत में परिवर्तन आ सकता है।

जिसमें वायु की प्रधानता होगी, वह अधिक डरेगा। नींद में भी भय लगेगा। स्वप्न भी दूषित आयेंगे, और भी अनेक विकृतियाँ आयेगी। ज्यों ही वायु शांत होगी, भूत भाग जाएगा। आयुर्वेद में वायु का नाम है, 'भूत'। वायु का ही प्रकोप भूत–भूतनियों का प्रकोप है।

स्वभाव बनता है भाव

भाव से ही स्वभाव बनता है। मन में एक विचार उत्पन्न होता है। वही विचार जब रूढ़ होता है तब वह स्वभाव बन जाता है। इसीलिए जब भी कोई बुरा विचार आए तो तत्काल प्रायश्चित के द्वारा उसका शोधन नहीं किया तो वह ग्रंथि बन जाएगी। जब तक वह ग्रंथि मन में बनी रहेगी, तब तक वह सताती रहेगी। भाव का जब शोधन नहीं किया जाता तब वह स्वभाव बन जाता है। वह सघन हो जाता है, जग जाता है और प्रतिक्रिया शुरू कर देता है। भाव को बदलने का अच्छा साधन है प्रायश्चित ।

जरूरी है ज्ञान

भाव और स्वभाव के परिवर्तन के लिए ज्ञान का होना भी बहुत जरूरी है। समस्या है – स्वभाव निर्माण के अनेक–अनेक शारीरिक कारण भी हैं। उन्हें कैसा जाना जाए ? सारे कारणों को जानना कैसे संभव है ? बायोकेमिस्ट कहता है कि अमुक प्रकार के लवण की कमी होती है तो आदमी का संतुलन बिगड़ जाता है और वह असामान्य आचरण करने लग जाता है। अनेक बीमारियां भी आदतों को बिगाड़ देती है। क्षार की कमी के कारण जैसे आदतों में परिवर्तन आता है वैसे ही रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा भी आदतें बनती–बिगड़ती हैं।

इन्डोबायोलोजिस्ट बताता है कि अमुक गंथि का स्राव होने के कारण ये बीमारियां आई हैं, आदतें बदलती हैं। जब ग्रथियों के स्राव संतुलित होते हैं तब बीमारियां मिट जाती हैं, आदतें बदल जाती हैं।

प्रश्न होता है कि आदमी इन भिन्न–भिन्न कारणों को कैसे जान सकता है ? एक–दो–चार कारण हो तो वह उनका ज्ञान कर सकता है पर इन सबको वह जान जाए, यह संभव नहीं है। एक–दो सूत्र ऐसे भी हैं, जो अन्यान्य कारणों के ज्ञान की पूर्ति कर सकें।

संकल्पशक्ति और भाव शुद्धि

पहला सूत्र है–संकल्प शक्ति का विकास। जिस व्यक्ति ने अपनी संकल्प शक्ति को जगा दिया, वह इन सारी कमियों को पूरा कर सकता है। इस शक्ति से असंभव संभव बन सकता है। उसका वैज्ञानिक कारण है। हमारे शरीर में प्रवाहमान सबसे शक्तिशाली धारा है–प्राणधारा । प्राणशक्ति जीवन का मूल आधार है। प्राणशक्ति जितनी प्रबल होती है, संकल्प उतना ही बलवान होता है। जितना प्रबल होता है संकल्प उतना ही प्रबल होता है परिवर्तन । संकल्प का प्रबल होना स्वभाव–परिवर्तन में अपरिहार्य तत्व है।

आदत परिवर्तन का सूत्र

एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि हजार बार उपदेश सुनने पर भी परिवर्तन घटित नहीं होता। उपदेश से दिशा–बोध हो सकता है। परिवर्तन घटित होता है अभ्यास के द्वारा। जब महापुरूष का सान्निध्य प्राप्त होता है, उसका अनुग्रह मिलता है। तब अनायास ही परिवर्तन हो जाता है। क्योंकि उस महान् व्यक्ति की प्राणधारा, आभामंडल बहुत प्रभावी होता है, शक्तिशाली होता है। ऐसे व्यक्ति के उपपात में जो व्यक्ति रहता है, उसमें परिवर्तन अवश्य आता है पर ऐसे व्यक्ति का योग विरल होता है।

अभ्यास के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव में परिवर्तन कर सकता है। अभ्यास परिपक्व तब होता है जब उसका चिरकाल तक अनुशीलन होता है। आदत तब तक नहीं छूटती है, जब तक उसने आदत को पकड़ रखा है।

विलियम जेम्स ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आदतों को बदलने का कोर्स प्रस्तुत किया है। उसमें तीन बातें मुख्य हैं:–

1 . बदलने की तीव्र इच्छा 2 . दृढ़ निश्चय 3 . निरन्तरता ।

पहली बात है कि व्यक्ति के मन में तीव्र अभिप्सा जागे कि उसे अपनी आदतों को बदलना है। जब तक यह इच्छा ही पैदा नहीं होती तब तक बदलने का प्रश्न ही पैदा नहीं

होता। पर उससे भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इच्छा के साथ दृढ़ निश्चय भी होना चाहिए। इच्छा को दृढ़ निश्चय में बदल देना चाहिए। निश्चय ऐसा हो कि मुझे बदलना ही है। बदले बिना मैं चैन नहीं लूंगा। निश्चय दृढ़ होगा तो रूपान्तरण प्रारम्भ हो जायेगा। दृढ़ निश्चय के साथ–साथ निरन्तरता भी होनी चाहिए। एक दिन निश्चय किया, फिर दस दिन तक उसकी स्मृति ही नहीं रहती हो तो कुछ भी रूपान्तरण घटित नहीं होगा। निरन्तरता से आदत अपने आप बदलने लग जाती है ।

धर्म है मनोचिकित्सा का सूत्र

आज अनेक संस्थान हैं, जिनमें मानसिक चिकित्सा का विभाग सक्रिय है। मानसिक चिकित्सा का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है किन्तु धर्म का प्रयोग, जो मनोचिकित्सा का प्रयोग है, वह बहुत पुराना है। हजारो–हजारों वर्षों में हजारो–हजारों धर्म के साधकों, अध्यात्म के आराधकों ने अनेक प्रयोग किए, अनेक सूत्र खोजे और अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन किया। आज यदि उन प्रयोगों का उपयोग किया जाए तो बहुत लाभ हो सकता है उससे न केवल मनोरोगी ही लाभान्वित होगा किन्तु मनोचिकित्सक भी लाभान्वित होगा।

दिल्ली प्रवास में आयोजन संयोजित हुआ। उसका विषय था–न्यूरो एन्डोक्राइन सिस्टम एण्ड मेडिटेशन। उसमें अनेक विशिष्ट चिकित्सकों और प्रोफेसरों ने भाग लिया। 'आल इन्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट' दिल्ली के मनोचिकित्सकों ने भी उस आयोजन में भाग लिया। कार्यक्रम चला। प्रवचन और प्रश्नोत्तर हुए। एक मनोचिकित्सक का कुछ दिन बाद एक पत्र मिला। उसमें लिखा था– मैंने सेमिनार में भाग लिया। मैं स्वयं मनोचिकित्सक हूं। मैने सेमिनार में बताए गए प्रयोग किए। वे सफल सिद्ध हुए। मेरा मानसिक तनाव घटा है। नींद सुखद हुई है।

मुझे पत्र पढ़कर आश्चर्य हुआ। जो दूसरे रोगियों की मानसिक चिकित्सा करता है, वह स्वयं मानसिक तनाव से ग्रस्त है । पानी में ही आग लग गई है। एक साधु या धर्म की आराधना करने वाला गृहस्थ यदि मानसिक तनाव से ग्रस्त होता है तो मानना चाहिए कि सूर्य की रश्मियां अंधकार फैला रही हैं ।

अतीत का प्रतिक्रमण

दूसरा उपाय है – प्रतिक्रमण। जब अतीत का प्रतिक्रमण करने में हमारी अन्तः प्रेरणा जाग जाती है तब समग्र जीवन में परिवर्तन शुरू होता है। हम इस बात को पकड़ें–प्रतिक्रमण और प्रायश्चित किये बिना, शोधन और परिष्कार किये बिना, शोधन

और परिष्कार किये बिना मानसिक ग्रंथियां नहीं खुलती, हजार उपचार करने पर भी परिवर्तन नहीं होता। मनोचिकित्सा के क्षेत्र में ग्रंथि–विमोचन को अधिक महत्व दिया जाता है। मनोचिकित्सक रोग की ग्रंथि को ढूंढने का प्रयत्न करता है। जब ग्रंथि पकड़ में आ जाती है तब चिकित्सा सुलभ हो जाती है।

ध्यान की प्रक्रिया में, मानसिक चिकित्सा और भाव–चिकित्सा की प्रक्रिया में अतीत के प्रतिक्रमण को अत्याधिक महत्व दिया गया है। जब अतीत का शोधन होता है, बहुत सारा भार हट जाता है, हल्केपन का अनुभव होता है।

साधना का समग्र सूत्र

ध्यान का प्रयोग प्रत्याख्यान का प्रयोग है। ध्यान में अपने आप प्रत्याख्यान होता है। ध्यान के द्वारा व्यक्ति में ऐसा रासायनिक परिवर्तन होता है कि व्यसन अपने आप छूट जाते हैं, प्रत्याख्यान स्वयं घटित होता है। जैसे ही व्यक्ति वर्तमान के प्रति जागरूक होते है वैसे ही उसमें अतीत का प्रायश्चित और भविष्य का प्रत्याख्यान प्रारंभ हो जाता है।

प्रश्न कायाकल्प का

एक अपरिचित आदमी आकर बोला – 'महाराज ! मैं कायाकल्प करना चाहता हूं। मैंने कहा–'कायाकल्प करना हो तो किसी वैद्य की शरण में जाओ, मेरे पास क्यों आए हो? उसने कहा "मैं शरीर से स्वस्थ हूं किन्तु मन से रूग्ण हूं।' मैंने कहा–'आओ, बैठो। तुम्हारी नाड़ी देखना चाहता हूं, निदान करना चाहता हूं।' वह बैठ गया। मैंने नाड़ी देखी। मुझे लगा–रोग असाध्य नहीं, साध्य है। कायाकल्प हो सकता है। मन के टिस्यू जीर्ण–शीर्ण अवश्य है पर मन टूटा नहीं है। मैंने कहा–तुम्हारा कायाकल्प हो सकता है पर कुछ शर्तें हैं। यदि वे तुम्हें मान्य हों तो मैं प्रयत्न करूं। उसने कहा–आपकी सभी शर्तें मैं मान लूंगा।

आराधना का कुटीर

मैंने पहली शर्त रखी कि तुम्हें कायाकल्प के लिए एक कुटीर बनाना होगा। वह होगा आराधना का कुटीर। कायाकल्प के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति सभी प्रदूषणों से बचे। आज की हवा भी शुद्ध नहीं है। आज का प्रकाश भी शुद्ध नहीं है। सारा पर्यावरण प्रदूषणों से भरा पड़ा है। उद्योगीकरण के द्वारा न केवल वायुमंडल दूषित हो रहा है, मन भी इतना तनावग्रस्त हो रहा है कि एक प्रकार से टूट रहा है। उसमें सहन करने की क्षमता नष्ट हो चुकी है।

पुराने जमाने में कहा जाता था – प्रातः काल सूर्य की रश्मियों का सेवन करना चाहिए। बालसूर्य की किरणों में विटामिन डी अधिक होता है। और भी अनेक लाभ होते हैं। आज सारे वायुमंडल में अणु धूलि तथा रेडियम के इतने विकिरण हैं कि प्रातः कालीन सूर्य कि किरणों का सेवन करना खतरे से खाली नहीं है। शारीरिक दृष्टि से भी प्रदूषण की समस्या है। जहां मन का कायाकल्प करना होता है वहां प्रदूषण से बचने की अत्यन्त आवश्यकता हो जाती है। मैंने कायाकल्प के इच्छुक व्यक्ति से कहा–तुम ऐसा आराधना का कुटीर बनाओं, जिसमें बाहर की हवा भी न लगे, बाहर का प्रकाश और प्रदूषण भी न पहुँचे। इन सबकी पहुँच से परे हो वह कुटीर ।

पंचकर्म की अनिवार्यता

दूसरी शर्त है तुम्हें पंचकर्म करना होगा। वे पांच कर्म हैं – वमन, विरेचन, निरूहण, वस्तिकर्म और स्नेहन। तुम्हें मन का कायाकल्प करने के लिए पंचकर्म पद्धति की पांचों क्रियाओं से गुजरना होगा। यह बहुत कठिन बात है। मैं स्वयं पंचकर्म से गुजरा हूं। मुझे उसकी कठिनाईयाँ ज्ञात हैं।

उसने कहा–आप मुझे इतना कठिन कोर्स दे रहे हैं। क्या आपको परंपरा का ज्ञान है? 'हां' मैं परंपरा को जानता हूं । मुझे पता है कोई नई बात नहीं है। मैंने परंपरा जानी है आचार्य तुलसी से और इसके पीछे महावैद्यों की प्रलम्ब परंपरा भी जुड़ी हुई है। पूरी एक श्रृंखला है। मैं तुम्हें महावैद्य आचार्य के पास ले चलूं, जो आराधना का कुटीर बनाने में और पंचकर्म कराने में कुशल शिल्पी थे। और भी कितने नाम गिनाऊँ। मैं इन सारे महावैद्यों की, आचार्यों की परंपरा जानता हूं इसीलिए मैं कहता हूं कि यदि तुम्हें मन का कायाकल्प करना है तो तुम्हें पंचकर्म करना ही होगा। इसके बिना कुछ भी नहीं होगा ।

उसने कुछ क्षणों तक चिन्तन किया। मन का कायाकल्प कराने का निश्चय कर सारी शर्ते स्वीकार कर लीं।

मैंने कहा–तुमने आराधना का कुटीर बना लिया है। अब पंचकर्म की क्रिया का प्रारंभ करो। पडिक्कमामि, निंदामि, गरहामि, आलाएमि, मिच्छामि दुक्कंड– ये पांच कर्म हैं। उस व्यक्ति के पंचकर्म की प्रक्रिया से शोधन हो गया। आयुर्वेदीय पंचकर्म से शरीर शुद्ध हो जाता है किन्तु उस शुद्धि को टिकाए रखने के लिए फिर उचित औषधि का सेवन आवश्यक होता है। उसी प्रकार मन को शुद्ध करने के पश्चात् फिर वह दूषित न बने, इसलिए कुछ करना शेष रह जाता है। कोरे 'मिन्छामि दुक्कंड़' से कुछ भी नहीं होता।

पूरा 'मिच्छामि दुक्कड़ं तब बनता है जब उसके साथ यह आगे का सूत्र 'इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं' जुड़ जाता है। 'मिच्छामि दुक्कड़ं' का अर्थ है– मैंने भूल से

यह काम कर दिया। इसके उत्तरसूत्र का अर्थ होता है – अब मैं वह भूल नहीं करूंगा, जो मैंने पहले की थी। 'पुनरकरणयाए अब्भुट्ठिमओमि' मैं सावधान करता हूं कि फिर वह कभी नहीं दोहराऊगां। भूल करना दोष है तो भूल को दोहराना महादोष है। जो व्यक्ति भूल को नहीं दोहराता, वह भूलों से बहुत कुछ सीख जाता है। यह रसायन है। शोधन के 'पश्चात् रसायन का प्रयोग आवश्यक होता है।

'मिच्छमि दुक्कड़ं' यह शोधन है। 'पुनरकरणयाए अब्भुट्ठिमओमि' 'इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं' यह रसायन है।

मैल क्यों जमता है ?

मन पर मैल जमा है पदार्थों के द्वारा। पदार्थ अनित्य हैं, अशाश्वत है। आदमी उनको नित्य और शाश्वत मान लेता है। उससे मूर्च्छा पलती है। इतना लगाव हो जाता है पदार्थ से कि एक सुई भी खो जाए तो मन खो जाता है। पदार्थ के वियोग से मन बेचैन हो जाता है। अनित्य को इतना नित्य मान लिया कि मानों वह कभी भी बिछुड़ने वाला नहीं है। पदार्थों के प्रति जो नित्यता की बुद्धि है, उससे मैल जमता है।

परिवार एक सच्चाई है किन्तु आदमी अपने आपको उससे अभिन्न मान लेता है। 'मैं और मेरा परिवार एक है' यह मान्यता बन जाती है। जब व्यक्ति परिवार के स्वार्थों का पोषण करता है तब तक परिवार वाले उसको अलग नहीं मानते और वह भी परिवार से अपने को अलग नहीं मानता किन्तु यह सच्चाई जब खंडित हो जाती है तब पता चलता है कि परिवार व्यक्ति के प्रति क्या है और व्यक्ति परिवार के प्रति क्या है? उस समय एक साथ इतना अनुताप उभरता है, इतना दु:ख होता है कि व्यक्ति का मन टुकड़े–टुकड़े हो जाता है। वह सोचता है जिस परिवार के लिए मैंने इतने कष्ट सहे, यह किया, वह किया, वही परिवार आज मेरे से आंख तक नहीं मिलाता । उसे अत्यन्त दु:खद अनुभूति होती है। मन पर मैल की परतें जमती चली जाती है। उसके लिए दु:ख के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचता। हम इस सच्चाई को मानकर चलें कि पारिवारिक संबंध, मित्रों और साथियों के संबंध वास्तविक नहीं हैं। अन्तिम सच्चाई यह है कि व्यक्ति अकेला है, बिल्कुल अकेला। हम इस सच्चाई को समझकर ही पारिवारिक संबंधों को निभा सकते हैं। जो इस सच्चाई को भूलकर संबंधों को अन्तिम सच्चाई मानकर चलते हैं, उनके मन पर मैल इतना गाढ़ा जम जाता है कि उसको धोने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ता है।

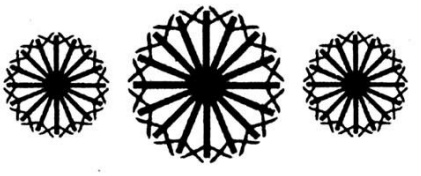

पथ्य की अनिवार्यता

रसायन के सेवन से भी काम पूरा नहीं होता। शोधन और रसायन के साथ–साथ पथ्य का सेवन भी करता है पर यदि वह पथ्यापथ्य का विवेक नहीं, रखेगा, जो चाहा, वह खाने लग जाएगा तो शोधन और रसायन का सेवन भी क्या करेगा? पथ्य का सेवन जरूरी है। उसके बिना प्रक्रिया पूरी नहीं होती। कहा गया– 'यदि पथ्यं किमौषधने? यद्यपथ्यं किमौषधेन? यदि पथ्य है तो औषधि सेवन से क्या? यदि अपथ्य है तो औषधि सेवन से क्या? जितना लाभ दवाई नहीं करती उतना लाभ पथ्य–अपथ्य कर देता है।

एक साधक ने बताया–मैंने पिछले शिविर में कुछ प्रयोग सीखे, दैनिक दिनचर्या के भोजन में परिवर्तन किया। नमक छोड़ दिया, चीनी छोड़ दी। भोजन की मात्रा कम कर दी। पर मेरी शक्ति यथावत् बनी रही। आलस्य घटा, स्फूर्ति बढ़ी और कार्य करने की क्षमता का विकास हुआ। स्वास्थ्य भी पहले से बहुत अच्छा बना।

यह सारा पथ्य का ही परिणाम है। यह पथ्य न हो, भोजन का क्रम न बदले और ध्यान भी चलता रहे तो कोई परिणाम नहीं आ सकता। पथ्य का विवेक हो, भोजन का क्रम बदले, दिनचर्या बदले, उचित श्रम हो तभी ध्यान फलदायी हो सकता है।

पथ्य क्या ? क्यों ?

प्रश्न होता है–पथ्य क्या है? पथ्य है मन की शांति, मन की निर्मलता। जी मानव – मन जीर्ण–शीर्ण हो गया है टूट–फूट गया है, उसे संभालना है तो उस पर ध्यान देना होगा। हमारे जीवन में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं चित्त, मन और चेतना। उन पर हम ध्यान हीं नहीं देते, सारा ध्यान शरीर पर केन्द्रित कर देते हैं। जहां शरीर को कष्ट होता है वहां आदमी मन और चेतना को भी गौण कर देता है।

सुख का साधन है – शरीर ! शरीर को आराम मिलना चाहिए। शरीर पर पसीना नहीं आना चाहिए। शरीर पर धूप नहीं लगनी चाहिए। आदमी प्रत्येक बात को शरीर की दृष्टि से ही सोचता है। वह चेतना को गौण कर देता है। जिस व्यक्ति ने कर्त्तव्य, सेवा, उदात्त भावना और परमार्थ चेतना को मूल्य दिया है, वह कभी शरीर कर विचार नहीं करता, उसको कभी अतिरिक्त मूल्य नहीं देता, क्योंकि उसका लक्ष्य ही बदल जाता है। इस दुनियां में जीने वाले निन्नानवें प्रतिशत लोग शरीर–प्रतिबंध होते हैं। वे शरीर की दृष्टि से विचार करते हैं, मन की दृष्टि से विचार नहीं करते। वस्तुतः मन की दृष्टि से विचार करना बहुत बड़ा पथ्य है।

मन का बुढ़ापा : तीन कारण

हम इस प्रश्न पर भी विचार करें कि मन बूढ़ा क्यों होता है? मन बीमार क्यों होता है? मन टूटता क्यों है ? इसके ऊतक खराब क्यों होते है? नए ऊतक क्यों नहीं बनते? शरीर के बीमार होने में मूल कारण यही है कि नए टिस्यू बनते नहीं और पुराने जीर्ण हो जाते हैं। यही समस्या मन की है ।

मन के टूटने, बीमार और बूढ़ा होने के तीन कारण हैं–शंका, आकांक्षा और विचिकित्सा। मन का कायाकल्प करने वाले व्यक्ति को इन तीन तत्वों से बचना होता है। जो इनसे बचता है, उसके सामने मन के कायाकल्प की पूरी प्रक्रिया प्रस्तुत हो जाती है।

हम अपनी दृष्टि को विकसित करें और मन के शोधन की प्रक्रिया को नए संदर्भ में पढ़े तो मन के कायाकल्प की पूरी कल्पना हमारे समाने प्रस्तुत होगी ।

आवेगः उप–आवेग

मनुष्य के शरीर में तीन दोष होते हैं – वात, कफ और पित्त। मानसिक जगत् में कामवात, लोभ कफ और क्रोध पित्त हैं। जब ये तीनों कुपित होते हैं तब सन्निपात का रोग प्रकट हो जाता है। ममता दाद है। ईर्ष्या खुजली है। हर्ष और विषाद गठियावात है। दूसरों का सुख देखकर जलना क्षयरोग है। मात्सर्य और अविवेक ज्वर हैं।

मानसिक आवेंगों और उप–आवेगों के अनेक प्रकार हैं। आवेग चार हैं– क्रोध, मान, माया और लोभ। भय, शोक, घृणा, ईर्ष्या और कामवासना–ये उप–आवेग हैं। ये अपनी मात्रा के अनुसार मानस को प्रभावित करते हैं।

आवेगः तीव्रता के कारण

क्रोध आदि की शक्ति तीव्र होती है इसलिए वे आवेग हैं। वे व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति को प्रभावित करने के अतिरिक्त उसके आन्तरिक गुणों–सम्यक् दृष्टिकोण और आत्म–नियन्त्रण को भी प्रभावित करते हैं। भय आदि उप–आवेग व्यक्ति के आन्तरिक गुणों को प्रत्यक्षतः उतना प्रभावित नहीं करते जितना शारीरिक और मानसिक स्थिति को करते हैं। उनकी शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है, इसलिए वे उप–आवेग हैं। आंतरिक गुणों में होने वाला प्रभाव बहुत सूक्ष्म होता है अतः वह असहज भाव से पहचानी नहीं जाती। आवेगों और उप आवेगों का शरीर और मन पर जो प्रभाव होता है, उसकी जानकारी हमें चिकित्सा–शास्त्र की पुरानी और नयी सभी शाखाओं के साहित्य द्वारा प्राप्त होती है।

प्रभाव की स्थिति

योगशास्त्र में भी इसकी चर्चा मिलती है। कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं:– मानसिक चिन्ता, निराशा, भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि मानसिक आवेगों से हृदय रोग उत्पन्न होता है। भय, चिन्ता, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य आदि मानसिक आवेगों से पुरूष का वीर्य पतला हो जाता है और स्त्री के रजाविकार का रोग उत्पन्न हो जाता है। मानसिक चिन्ता, अशान्ति अद्विग्नता और क्षोभ के कारण क्रोध और घृणा से गुर्दे विकृत होते हैं तथा रक्त विषैला बनता है। चिन्ता और उदासीनता से फेफड़े दुर्बल होते हैं, मस्तिष्क विकृत और रक्त दूषित होता है। विषय–वासना की प्रबलता से वीर्य–विकार, प्रमेह आदि मनोविकारों की दशा में खाये जाने वाले अन्न का समुचित परिपाक नहीं होता ।

इनकी उत्पत्ति का कारण यह है कि मानसिक आवेग शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति को नष्ट कर डालते हैं।

हमारे शरीर में दो पाचक, रस रहते है। लवणांग (हाइड्रोक्लोरिक) और पेप्सीन। द्वेष, ईर्ष्या, भय, शोक, क्लेश, निन्दा, घृणा आदि मानसिक आवेगों से प्रभावित अवस्था में पाचक रस अल्प मात्रा में बनते हैं इसलिए शरीर और मन शक्तिहीन हो जाता हैं।

चिन्ता, शोक, भय, क्रोध लोभ आदि से अरूचि और अजीर्ण रोग होता है। चिन्ता आदि से आमाशयिक स्राव कम होता है और क्षुधा नष्ट हो जाती है। हमारा जीवन प्रवृत्ति – बहुल है। जहां प्रवृत्ति होती है वहाँ वेंग होता है। वह दो प्रकार का होता है–शारीरिक और मानसिक। शारीरिक वेग तेरह प्रकार के हैं वात (उर्ध्ववात व अधोवात), मल, मूत्र, छींक, प्यास, भूख, निद्रा, काम, श्रमजनितश्वास, जमहाई, अश्रु, वमन और शुक्र। इनका वेग धारण करने से रोग उत्पन्न होते हैं इसलिए वेग को रोकने का निषेध है।

रोग के चार प्रकार

आयुर्वेद में रोग चार प्रकार के माने गये हैं:–

1. आगन्तुक
2. शारीरिक
3. मानसिक
4. स्वाभाविक

आगन्तुक रोगों का हेतु बाह्य उपकरण–शस्त्र आदि हैं ।

शारीरिक रोग अल्प, मिथ्या और अतिमात्रा में प्रयुक्त अन्न–पान के कारण कुंपित (या विषम) हुए वात, पित्त, कफ, रक्त या इनके मिश्रण से उत्पन्न हाते हैं। मानसिक रोक

क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया, दैन्य, मात्सर्य, काम, लोभ आदि से तथा इच्छा और द्वेष के अनेक भेदों से उत्पन्न होते हैं।

स्वाभाविक रोग भूख, प्यास, बुढ़ापा, मृत्यु, निद्रा आदि हैं। रोग का एक हेतु कर्म भी माना जाता है कर्म रोग किसी बाह्य हेतु के बिना भी प्रकट हो जाते हैं। मर्मज रोग हमारे लिए परोक्ष हैं। स्वाभाविक रोग जीवन का सहज क्रम है। आगन्तुक रोग आकस्मिक घटना है।

शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक इन तीनों प्रकार के रोगों में मुख्य रोग मानसिक हैं। तात्पर्य की भाषा में – रोग के मुख्य हेतु आन्तरिक दोष–क्रोध आदि हैं।

मन वशवर्ती होता है तो वात, पित्त और कफ की अतिरिक्त विषमता नहीं होती। मन पवित्र होता है तो क्रोध आदि जनित रोग होते हैं। उसकी अस्थिरता, उच्छृंखलता और अपवित्रता में तीनों प्रकार के रोग होते हैं। इसलिए आरोग्य की पृष्ठभूमि में स्वास्थ्य सहज अपेक्षित है। स्वस्थ्य यानी स्वस्थिति–आत्मस्थिता।

क्या हम स्वस्थ हैं ?

क्या हम स्वस्थ हैं? यह प्रश्न हम किसी दूसरे से न पूछें, अपने–आप से पूछें। इस प्रश्न का उत्तर किसी दूसरे से पाने का प्रयास न करें किन्तु अपने आप से ही इसका उत्तर पाने का प्रयत्न करें। यदि हमारे जीवन में समता हैं तो समझना चाहिए कि हम शरीर से भी स्वस्थ हैं और मन से भी स्वस्थ हैं। यदि समता नहीं है तो हम शरीर से भी स्वस्थ नहीं है और मन से भी स्वस्थ नहीं हैं। हम स्वास्थ्य को दो भागों में बांटते हैं। एक है शारीरिक स्वास्थ्य और दूसरा है मानसिक स्वास्थ्य। यदि हम गहरे में उतरकर देखें तो यह विभाजन जरूरी नहीं लगता। मन स्वस्थ है तो समझ लेना चाहिए कि शरीर स्वस्थ है। शरीर स्वस्थ है तो समझ लेना चाहिए कि मन स्वस्थ है शरीर और मन–दोनो जुड़े हुए हैं। मन शरीर को प्रभावित करता है और शरीर मन को प्रभावित करता है। किन्तु मन का प्रभाव शरीर पर गहरा होता है। मन का स्वास्थ्य समता से संबंधित है। यदि मन में समता है तो मानसिक स्वास्थ्य होगा और यदि समता नहीं है तो मन कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। समता की साधना के जो सूत्र हैं, वे ही मानसिक स्वास्थ्य की साधना के सूत्र हैं।

परिणामों की स्वीकृति

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का दूसरा सूत्र है –परिणामों की स्वीकृति। हम प्रवृत्ति करते हैं किन्तु उसके परिणामों को स्वीकार नहीं करते और इसीलिए मन में असंतोष और अशांति पैदा होती है। कृत के परिणामों से जहां अपने आपको बचाने की

मनोवृत्ति होती है, वहां मानसिक स्वास्थ्य खतरे में पड़ जाता है। रोग का एक कीटाणु उसमें घुस जाता है। परिणाम को स्वीकार करने के लिए मन बहुत शक्तिशाली चाहिए।

जो मन शक्तिहीन होता है, वह कभी परिणामों को स्वीकार नहीं कर सकता। हमें अच्छे या बुरे–सभी प्रकार के परिणामों को स्वीकारना चाहिए। जिस व्यक्ति में परिणामों को स्वीकार करने का साहस नहीं होता, वह परिणामों को दूसरे के माथे पर मढ़ देता है, स्वयं बच निकलना चाहता है। यदि परिणाम अच्छा है तो उसका श्रेय स्वयं लेना चाहेगा और यदि परिणाम बुरा है तो उसका श्रेय दूसरों पर उडेल देगा। यह साहसहीनता है। इससे मन मलिन होता है, बीमार होता है।

सत्य के प्रति समर्पण

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का तीसरा सूत्र है–सत्य के प्रति समर्पण। सत्य की व्याख्या बहुत ही जटिल है। किसे सत्य माना जाए? हमें इसमें उलझना नहीं है। सत्य का अर्थ है –सार्वभौम नियम (युनिवर्सल ट्रुथ)। मृत्यु एक सार्वभौम नियम है, यह एक बड़ी सच्चाई है। कोई भी इसे नहीं टाल सकता। इस दुनिया में तीर्थकर, भगवान, अर्हत, मसीहा आदि–आदि अनेक शक्तिशाली व्यक्ति हुए हैं, वे भी इस शाश्वत नियम को नहीं टाल पाए हैं। कोई भी इस सार्वभौम नियम का अपवाद नहीं है। कोई भी प्राणी सदेह अमर नहीं होता। विदेह में जो अमर होता है, वह हमारे सामने नहीं है। मृत्यु एक सच्चाई है। कर्म एक सच्चाई है। काल एक सच्चाई है। वस्तु–स्वभाव एक सच्चाई है। सार्वभौम सच्चाईयों के प्रति जो समर्पित रहता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है।

दुःखी होने का अर्थ

एक व्यक्ति की घड़ी गुम हो गई। व्यक्ति रोने लगा। उसका मुंह पर उदासी छा गई। जो करोड़पति हैं, उनकी जेब से भी यदि सौ रूपये गुम हो जाते हैं तो उनका सारा दिन उदासी में बीतता है। इसका मतलब है कि वे सच्चाई के प्रति समर्पित नहीं हैं। वे इस सच्चाई को नहीं जानते–जहां संयोग है वहां वियोग निश्चित है। हम इस सच्चाई के प्रति समर्पित हों–'संयोगाः विप्रयोगान्ताः' संयोग विप्रयोग से जुड़े रहते हैं। जिस क्षण में संयोग होता है, वियोग का सिलसिला भी चालू हो जाता है। जन्म के साथ ही मृत्यु का क्षण भी प्रारंभ हो जाता है। जन्म का अन्तिम परिणाम है मृत्यु। जन्म हो और मृत्यु न हो, यह कभी संभव नहीं हैं जो मृत्यु की सच्चाई को जानते हैं वे किसी के मर जाने पर अपना संतुलन नहीं खोते। कुछ दुःख होता है किन्तु वह भी स्थाई नहीं रहता, क्षणिक होता है। जिन्होंने इस शाश्वत सत्य के प्रति समर्पण नहीं किया, वे मृत्यु की घटना से विचलित हो जाते है और सत्य के प्रति समर्पण नहीं किया, वे मृत्यु की घटना से विचलित हो जाते हैं और अपने मन को रोगी बना देते हैं ।

सहिष्णुता का विकास

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का चौथा सूत्र है–सहिष्णुता का विकास। सहिष्णुता को विकसित किए बिना कोई व्यक्ति संतुलित जीवन नहीं जी सकता। जो व्यक्ति सहिष्णु नहीं होता। वह अपने मन को सदा दु:ख में डाले रहता है। कांच का बर्तन कब फूट जाए कहा नहीं जा सकता। असहिष्णु व्यक्ति का मन कब टूट जाए, कहा नहीं जा सकता। थोड़ी सी भी स्थिति आती है और तत्काल मन बेचैन हो उठता है। व्यक्ति ध्यान करने बैठता है। गर्मी के दिन होते हैं और पंखा अचानक बंद हो जाता है। मन ध्यान से हटकर पंखे में उलझ जाता है। मन इतना आकुल–व्याकुल हो जाता है कि बेचारा ध्यान कहीं भटक जाता है।

जिसने सहिष्णुता को साध लिया, उसके लिए सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, सुविधा–असुविधा कोई अर्थवान् नहीं होते। ऐसा व्यक्ति अपने मन और शरीर का ऐसा निर्माण कर लेता है, जिससे वह हर स्थिति को झेलने में समर्थ और सक्षम होता है।

यथार्थ प्रस्तुति

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पांचवां सूत्र है– अपने आपको यथार्थरूप में प्रस्तुत करना। व्यक्ति अपने आपको यथार्थ–रूप में प्रस्तुत करना नहीं चाहता। वह अपने आपको उस रूप में प्रस्तुत करता है जिससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़े किन्तु जब यथार्थ सामने आता है तब बहुत कठिनाइयां पैदा हो जाती है।

सामाजिक संदर्भ में अपने–आपको अयथार्थ रूप में प्रस्तुत करना अपने–आपको धोखा देना है, दूसरे को धोखा देना है। इससे अनेक कठिनाईयां और समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य

आयुर्वेद में शरीर के स्वास्थ्य को ही स्वास्थ्य नहीं माना है, मन के स्वास्थ्य को भी स्वास्थ्य माना है। प्रश्न आया स्वस्थ कौन ? कहा गया –

समाग्निः समदोषश्च समाधतुमलाक्रियः।
प्रसन्नात्मोन्द्रियमनाः, स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।

जिस व्यक्ति के शरीर की धातुएं सम हैं, विषम नहीं हैं, अग्नि सम है, विषम नहीं है, दोष और मल की क्रिया भी सम है, वह स्वस्थ है। जिसकी इन्द्रियां उच्छृंखल नहीं है, जिसका इन्द्रियों पर नियंत्रण है, जो प्रसन्न आत्मा है, वह स्वस्थ है। शरीर की धातुएं और मल–दोष सम हैं किन्तु मन की प्रसन्नता नहीं है, निर्मलता नहीं है तो व्यक्ति स्वस्थ

नहीं हो सकता। जिसका इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं है, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ रहने के लिए शरीर की क्रियाओं का ठीक होना और मन की प्रसन्नता का होना–दोनों आवश्यक हैं ।

आहार का स्वास्थ्य पर प्रभाव

आहार का भी मानसिक स्वास्थ्य के साथ बहुत संबंध है। एक प्रकार का भोजन करने वाला व्यक्ति बहुत क्रोधी बन जाता है। दूसरे प्रकार का भोजन करने वाला व्यक्ति लालची बन जाता है। वृत्ति के साथ भोजन का बहुत गहरा संबंध जुड़ा हुआ है।

पहले मानसशास्त्री और मनोचिकित्सक मानते थे कि मानसिक विकृतियों के कारण, मस्तिष्कीय दुर्बलता के कारण मानसिक बीमारियां पैदा होती हैं। किन्तु अब नई खोजों से यह पता चला है–अपोषण और कुपोषण–ये दोनों मानसिक बीमारियों के लिए काफी जिम्मेदार हैं। पूरा पोषण नहीं मिलता है तो स्नायुविक दुर्बलता होती है, मानसिक रोग पैदा होते हैं। कुपोषण से भी मानसिक रोग पैदा होते हैं। भोजन का मतलब कोरा पेट भरना ही नहीं है। शरीर को जिन तत्त्वों के संतुलन की जरूरत है, जो तत्त्व शरीर में पूरा कार्य करते हैं, उनके सम्यग् आहरण से शरीर और मन को पोषण मिलता है। शरीर के पूरे यन्त्र को संचालित करने के लिए कार्बोहाइड्रेट भी चाहिए, चिकनाई भी चाहिए, लवण भी चाहिए, क्षार भी चाहिए। विटामिन–सारतत्त्व भी चाहिए। अगर एक नहीं मिलता है तो उससे सम्बन्धित अंग निकम्मा हो जाता है। शरीर का श्रम करने वाला व्यक्ति यदि अन्न ज्यादा खाता है तो कठिनाई पैदा नहीं होती । मानसिक काम करने वाला, बौद्धिक श्रम करने वाला कोरे अन्न पर रहे, उसे स्वस्थ पोषण मिले तो मानसिक अवस्था गड़बड़ा जायेगी। इसलिए संतुलन यानी न अपोषण और न कुपोषण किन्तु सम्यक् पोषण। आज यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए मानस शास्त्रियों के द्वार सम्मत हो गये है। इस स्थिति में आहार पर अनेक कोणों से विचार करना जरूरी है।

स्वास्थ्य का आधारः– मानसिक स्वास्थ्य

आज चिकित्सा विज्ञान और आयुर्विज्ञान में भी इस सच्चाई को स्वीकारा गया है कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य आवश्यक है। बहुत सारी बीमारियां हमारे मन के कारण होती हैं। बड़ा आश्चर्य होता है। किन्तु आदमी उद्वेग करता है, आवेश में आता है और घृणा भी करता है। वह दूसरों की निन्दा भी करता है, दूसरों को सताता भी है। ये सारी मानसिक प्रवृत्तियां करता है और अपने आपको स्वस्थ भी रखना चाहता है, यह कैसे संभव है ?

जिस व्यक्ति को अपना मानसिक स्वास्थ्य इष्ट नहीं है, उसे शारीरिक स्वास्थ्य भी इष्ट नहीं हैं कैसर की बीमारी, अल्सर की बीमारी, श्वास–दमा की बीमारी–इस प्रकार की बहुत सारी बीमारियां मन से जुड़ी हुई हैं। मन में एक प्रकार की भावना जागती है और बीमारी पैदा हो जाती है।

यह दृष्टिकोण बने–बीमारी की खोज मन में की जाए। हम देखें, कौन सी वृत्ति मन में जाग रही है, कौन सी वृत्ति प्रबल है, सक्रिय है और उसके द्वारा किस प्रकार की बीमारी पैदा हो रही है। मानसिक स्वास्थ्य को पाने के लिए आवेशों पर, क्षोभ और चंचलता पर नियंत्रण आवश्यक है। कोई भी घटना सुनी और मन क्षुब्ध हो गया। तालाब में कंकड़ फेंका और तरंग उठ गई। तरंगें उठती रहेंगी तो वह पानी कभी शांत नहीं होगा। इस प्रकार बाहरी घटना एक तरंग पैदा कर देती है तो मन स्वस्थ नहीं रह सकता और मन स्वस्थ नहीं रहता तो फिर तन स्वस्थ नहीं रह सकता। इस सच्चाई का स्पष्ट अनुभव दृष्टिकोण के बदले बिना संभव नहीं लगता।

स्वास्थ्य का रहस्य : स्वस्थ चिंतन

चिन्तन से व्यक्ति को परखा जा सकता है, व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का परीक्षण किया जा सकता है।

आचार्य भिक्षु जंगल में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। संयोगवश कोई साधु पास में नहीं था। वे अकेले ही थे। उस मार्ग से एक काफिला निकला। कुछ लोग पास में आए। उन्होंने वंदना कर पूछा– 'महाराज आप कौन हैं ? आपका नाम क्या है' आचार्य भिक्षु ने कहा– 'मैं मुनि हूं मेरा नाम है भीखन।' लोग एक साथ बोल पड़े–अरे, भीखन जी! हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। गांव–गांव में आपकी महिमा के गीत गाए जा रहें हैं। हमारे मन में तो आपकी तस्वीर ही दूसरी थी हमने सोचा था–कितने बड़े सन्त होंगे। उनके साथ संतो की बड़ी टोली होगी। उनके पास हाथी, घोड़े, नौकर–चाकर आदि होंगे, बड़ा ठाट–बाट होगा। परन्तु आप तो अकेले ही हैं। जमीन पर बैठे हैं । न नौकर, न घोड़ा, न हाथी। सामान्य व्यक्ति की भांति बैठे हैं।

आचार्य भिक्षु का यदि चिन्तन अस्वस्थ होता तो मन–ही–मन दुःखी हो जाते और यह सोचते कि लोगों के मन में मेरी तस्वीर कुछ और है किन्तु मैं कुछ और हूँ। यदि जमीन फट जाए तो मैं उसमें समा जाऊं।

आचार्य भिक्षु ने कहा–'यदि मेरे पास इतना ठाट–बाट होता तो इतनी महिमा नहीं होती। मैं अकेला हूं इसीलिए यह सारी महिमा है। जो व्यक्ति अपने में अकेला होता है और अपने अकेलेपन का अनुभव करता है, वह स्वयं अपनी महिमा का अनुभव करता है, दूसरे भी उसकी महिमा का अनुभव करते हैं।'

आघात का परिणामः-

अनेक बीमारियां मानसिक दुर्बलताओं के कारण पनपती हैं। एक भाई को मैंने पूछा–तुम स्वस्थ थे। हट्टे–कट्टे थे। ऐसी स्थिति कैसे हो गई? पूरा शरीर थका–मांदा –सा लगता है। क्या बात है ?

उसने कहा–मेरे परिवार का एक सदस्य अत्यन्त बीमार हो गया था। वह न चल सकता है, न उठ–बैठ सकता है, न करवट ही बदल सकता है। उसकी स्थिति को देखकर मुझे बहुत धक्का लगा। उसी दिन से मेरी यह स्थिति हो रही है। न खाया हुआ पचता है और न कोई पदार्थ अच्छा लगता है।

महत्वपूर्ण चिकित्सा–सूत्र

यह मन की बीमारी है, शरीर की नहीं। दूसरों पर आरोप लगाने के भयंकर परिणाम होते हैं। दूसरों पर आरोप लगाने वाला, दूसरों पर आरोप लगाने से पूर्व स्वयं आरोपित हो जाता है और अनजाने ही मन उस बात को इतना पकड़ लेता है। वह व्यक्ति अपराधी की भांति मन ही मन घुलने लग जाता है। यह एक प्रकार का कैन्सर है। कैन्सर को, अन्तः व्रण और शल्य का पता नहीं चलता पर भीतर ही भीतर वह विकृति पैदा कर देता है और एक दिन जब विस्फोट होता है तब ज्ञात होता है कि कितना भयंकर परिणाम हुआ है।

मन की बीमारियां अपने आपको न देखने के कारण होती हैं। 'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें'–यह एक छोटी सी बात लगती है किन्तु यह महत्वपूर्ण चिकित्सा – सूत्र है, कारगर,औषधि है। यदि एक सूत्र हृदय अंग हो जाता है तो सारी चिकित्सा पद्धतियां हाथ लग जाती हैं ।

॥ ओ३म् ॥

(1) ब्रह्मयज्ञ : वैदिक सन्ध्या

अथाचमनमन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये ।
शँयोरभिस्त्रवन्तु नः ।। -यजुः० 36 । 12

अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुश्चक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे ।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खम्ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

प्राणायाममन्त्रा :

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ।।
-तैत्ति प्र० 10 ।27

अथाघमर्षणमन्त्राः

ओम् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः ।। 1 ।। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽअजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।।2 ।। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।3 ।।
-ऋ० 10 ।190 ।1-3

अथाचमनमन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शँयोरभिस्त्रवन्तु नः।। -यजु० 36 ।12

अथ मनसापरिक्रमा-मन्त्राः

ओम्। प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।1।।

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।2।।

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्न मिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।3।।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।4।।

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।5।।

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।6।। -अथर्व० 3।27।1-6

अथोपस्थानमन्त्राः

ओम्। उद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्तऽउत्तरम्।
देवन्देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।1।। -यजुः० 35।14

उदुत्यं जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।।2।। -यजुः० 33।31

चित्रन्देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्ष सूर्यऽआत्मा जगतस्तरस्थुषश्च स्वाहा।।3।। -यजुः० 7।42

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्।।4।।
-यजुः० 36।24

अथ गायत्री-मन्त्रः

ओम्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
-यजुः० 36।3

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयानेन जपोपासना-दिकर्मण धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्न।

नमस्कार-मन्त्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शङ्कराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च।। -यजुः० 16।41

इति सन्ध्योपासनविधिः

अग्निहोत्र विधि (देवयज्ञः)

अथ आचमनमंत्रः

जल पात्र से दाहिनी हथेली में जल लेकर आचमन करें

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।। इससे पहला

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।। इससे दूसरा

ओम् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीःश्रयतां स्वाहा ।। इससे तीसरा

दाहिना हाथ धोकर, बाई हथेली में जल लेकर अंग स्पर्श करें

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु ।। इस मंत्र से मुख का स्पर्श करें ।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।। इस से नासिका के दोनो छिद्र स्पर्श करें ।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।। इस मन्त्र से दोनो नेत्रों को स्पर्श करें ।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।। इस मन्त्र से दोनो कानो को स्पर्श करें।

ओ बाह्वोर्मे बलमस्तु।। इस मन्त्र से दोनो भुजाओं को स्पर्श करें ।

ओं ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ।। इस मन्त्र से दोनो जंघाओं को स्पर्श करें ।

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।। इस मन्त्र से शरीर के सभी अंगों पर जल छिड़कें ।

ईश्वर-स्तुति प्रार्थना उपासना मंत्र

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ।।

तू सर्वेश सकल सुखदाता, शुद्ध स्वरुप विधाता है।
उसके कष्ट नष्ट हो जाते, पास शरण तेरे जो आता है।।
सारे दुर्गुण दुर्व्यसनों से, हमको नाथ बचा लीजे ।
मंगलमय गुण कर्म पदार्थ, प्रेम सिन्धु हमको दीजे ।।

हरिण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

तू ही स्वयं प्रकाश सुचेतन, सुख स्वरुप शुभ त्राता है ।
सूर्य चन्द्रलोकादिक को, तू रचता और टिकाता है।।
पहले था अब भी तू ही है, घट-घट में व्यापक स्वामी ।
योग, भक्ति तप द्वारा तुझको, पावें हम अन्तर्यामी ।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

तू ही आत्मज्ञान बलदाता ! सुयश विज्ञ जन गाते हैं ।
तेरी चरण शरण में आकर के, भवसागर तर जाते हैं ।।
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे बिसराने में ।
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु तुझसे लग्न लगाने में ।।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

तूने अपनी अनुपम माया से जग में ज्योति जगाई है ।
मनुज और पशुओं को रचकर, निज महिमा प्रकटाई है।।
अपने हिय-सिंहासन पर, श्रद्धा से तुझे बिठाते हैं ।
भक्ति भाव से भेंटे लेकर, तब चरणों में आते हैं ।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

तारे रवि चन्द्रआदिक रचकर निज प्रकाश चमकाया है।
धरणी को धारण कर तूने कौशल अलख जगाया है।
तू ही विश्व विधाता, पालक,तेरा ही हम ध्यान करें ।
शुद्ध भाव से भगवन् ! तेरे भजनामृत का पान करें ।।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।

तुझसे बड़ा न कोई जग में सब में तू ही समाया है,

जड़ चेतन सब तेरी रचना, तुझमें आश्रय पाया है।।

हे सर्वोपरि विभो ! विश्व का तूने साज सजाया है,

हेतु रहित अनुराग दीजिए, यही भक्त को भाया है।।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।

तू गुरु है, प्रजेश भी तू है, पाप पुण्य फल दाता है ।
तू ही सखा, बन्धु मम, तुझसे ही सब नाता है ।।
भक्तों को इस भव बन्धन से, तू ही मुक्त कराता है ।
तू है अज अद्वैत महाप्रभु ! सर्वकाल का ज्ञाता है ।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठांते नम उक्तिं विधेम ।।

तू है स्वयं प्रकाशरुप प्रभो ! सब का सिरजनहार तू ही ।
रसना निशिदिन रटे तुम्हीं को, मन में बसना सदा तू ही ।।
कुटित पाप से हमें बचाते रहना, हर दम दया निधान ।
अपने भक्तजनों को भगवन्, दीजै यही विशद् वरदान ।।

अग्न्याधानमन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । -गोभिलगृह्य0 1॥1॥11

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धरकर उसमें छोटी-छोटी समिधा लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों में उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर निम्न मंत्र से अग्न्याधान करें:-

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे।। ऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।

-यजु:0 3/5

इस मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, निम्न मंत्र पढ़के व्यजन=पंखे से अग्नि को प्रदीप्त करे-

अग्नि प्रदीप्त करने का मंत्र

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयञ्च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वें देवा यजमानश्च सीदत।। यजु:0 15/54

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की आठ-आठ अंगुल की तीन समिधाएँ घृत में डुबा, उनमें से एक-एक निकाल निम्नलिखित मन्त्रों से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ाएँ-

समिधाधान मन्त्र

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्ये जातवेदसे- इदन्न मम ।।1।। -आ०गृह्य० 1 ॥ 10 ॥12

इस मंत्र से पहली समिधा चढ़ाएँ ।

ओ३म् समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम ।।2।। इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम ।।3।। -यजु:० 3 ॥ 1-2

इस मंत्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम ।।4।। -यजु:० 3/3

इस मंत्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें ।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके नीचे लिखे मन्त्र से पाँच घृत की आहुति देनी ।

पञ्चघृताहुति - मन्त्रः

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।। इदमग्नये जातवेदसे - इदनन मम ।।1।। -आ०गृह्य० 1 ॥ 10 ॥12

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व आदि दिशा और चारों और छिड़काएँ-**जलप्रोक्षण मन्त्र**

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व ।। -इससे पूर्व दिशा में

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व ।। -इससे पश्चिम दिशा में

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व ।। -इससे उत्तर दिशा में

-गोभि० गृह्य० 1 ॥ 3 ॥ 1-3

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।। -यजुः० 3 ॥1

इस मन्त्र से वेद के चारों ओर जल छिड़काएँ।*

निम्न आहुतियाँ मुख्य होम के आदि और अन्त में दी जाती हैं। इनमें यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिणभाग में जो दूसरी आहुति देनी होती है, उनका नाम 'आघारावाज्याहुति' है और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनका नाम 'आज्यभागाहुति' है, अतः घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़के-

आघारावाज्यभागाहुति-मन्त्रः

ओ३म् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये-इदन्न मम।।

★ जल छिड़कने की विधि ऐसी है - पूर्व में - दक्षिण से उत्तर की ओर, पश्चिम में-दक्षिण से उत्तर की ओर, उत्तर में-पश्चिम से पूर्व की ओर तथा 'देवसवितः' मंत्र से पूर्व से आरम्भ करके वेदी के चारों ओर जल छिड़कना चाहिए। **-सम्पादक**

इस मंत्र से वेदी के उत्तरभाग में अग्नि पर आहुति दें।

ओ३म् सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय-इदन्न मम ।।

इस मंत्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधाओं पर आहुति दें-

आज्यभागाहुतिमन्त्रः

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा ।। इदमिन्द्राय-इदन्न मम ।।

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति दें ।

प्रातःकालीन प्रधान होम : 'मुख्य होम'

आघारावाज्यभागाहुति चार देके आगे दिये हुए मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करें।

प्रातःकाल आहुति के मंत्र

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।।1।। -यजुः० 3॥9

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।2।। -यजुः० 3॥9

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्या ज्योतिः स्वाहा ।।3।। -यजुः० 3॥9

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ।।4।।

☆ ☆ ☆ ☆

[यदि सायंकाल पृथक् यज्ञ करना हो तो निम्न मन्त्रों से आहुति दें]

सायंकालीन-आहुति के मंत्र

आचमन से लेकर आधारावाज्यभागाहुति देकर नीचे लिखे प्रकार अग्निहोत्र करें-

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।1।।

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नि स्वाहा ।।2।।

अब तीसरे मंत्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी चाहिए-

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।3।।

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ।।4।।

प्रातः-सायंकालीन आहुतिमन्त्राः

ओं भूरग्नयये प्राणाय स्वाहा ।।

इदमग्नये प्राणाय-इदन्न मम ।।1।।

ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।।

इदं वायवेऽपानाय-इदन्न मम ।।2।।

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।।

इदमादित्याय व्यानाय स्वाहा ।।

इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ।।3।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम ।।4।।

ओ३म् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।।5।।

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्रे मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।6।। -यजुः० 30 ॥14

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रन्तन्न आ सुव ।।7।। -यजुः० 30 ॥ 3

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि-विद्वान। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।8।।[1] -यजुः० 40 ॥ 16

पूर्णाहुति-प्रकरणम् आघारावाज्याहुतिमन्त्राः

ओ३म् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्निम-इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग में आहुति दें,

ओ३म् सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय-इदन्न मम ।। -गो०गृ० 1 ॥8 ॥24

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में आहुति दें ।

आज्यभागाहुतिमन्त्राः

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।

इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ।

इदमिन्द्राय-इदन्न मम ।।

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में आहुति देनी, उसके पश्चात् उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ।

व्याहृत्याहुतिमन्त्राः

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये - इदन्न मम ।।1।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ।। इदं वायवे-इदन्न मम ।।2।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।।3।।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।। इदमग्निवारूवादित्येभ्यः - इदन्न मम ।।4।।

ये चार घी की आहुति देकर निम्न मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति दें। यह एक ही है। यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिए ।

स्विष्टकृदाहुतिमन्त्रः

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहा-करम्। अग्निष्ट-त्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु में । अग्ने स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।। इदमग्नेये स्विष्टकृते-इदन्न मम ।। -आश्व० 1 ॥ 10 ॥ 22

इससे एक आहुति करके प्राजापत्याहुति आगे वाले मंत्र को मन में बोलके देनी चाहिए-

---

1. सामग्री की आहुति केवल प्रातः और सायंकालीन मन्त्रों से देनी है। शेष सब घृत-आहुतियाँ हैं। हाँ, यदि गायत्री अथवा 'विश्वानि देव' मन्त्र से अधिक आहुतियाँ देनी हों तो घृत के साथ सामग्री की आहुतियाँ भी दी जानी चाहिए।

प्राजापत्याहुतिमन्त्रः

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।।

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें।

आज्याहुतिमन्त्राः (पवमानाहुतयः)

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ।। इदमग्नेये पवमानाय-इदन्न मम ।।1।।

-ऋ० 9 ॥66 ॥19

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।। तमीमहे महागयं स्वाहा ।। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ।।2।। -ऋ० 9 ॥66 ॥20

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम।।3।। -ऋ० 9 ॥66 ॥21

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।।4।। -ऋ० 10 ॥ 121 ॥ 10

इनसे घृत की चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" के निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मंगल कार्यों में आठ आहुति देवें। ये आठ आहुतिमन्त्र ये हैं:-

अष्टाज्याहुतिमन्त्राः

ओं त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमीग्रीवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ।।1।। -ऋ० 4 ॥ 1 ॥ 4

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ।। इदमग्निवरुणाभ्याम्- इदन्न मम ।।2।। -ऋ० 4 ॥ 1 ॥ 5

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा।। इदं वरुणाय-इदन्न मम ।।3।। -ऋ० 1॥25॥19

ओं तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा।। इदं वरुणाय-इदन्न मम ।।4।। -ऋ० 1॥24॥11

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञिया पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णु र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ।। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः-इदन्न मम ।।5।।

-कात्या० श्रौत० 25॥1॥11

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा। इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ।।6।।

-कात्यायनश्रोत० 25॥1॥11

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ।। इदं वरुणायऽदित्यायाऽ -दितये च-इदन्न मम ।।7।। -ऋ० 1॥24॥15

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञ हि सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ।। इदं जातवेदोभ्याम्-इदन्न मम्।।8।। -यजुः० 5॥3

पुनः निम्नलिखित मंत्र से पूर्णाहुति करें, स्रुवा को घृत से भरके:-

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ।।

इस मन्त्र से एक आहुति दें, ऐसे ही दूसरी और तीसरी आहुति दें ।

पूर्णमासी की आहुतियाँ

ओम् अग्नेय स्वाहा ।।1।।

ओम् अग्निषोमाभ्यां स्वाहा ।।2।।

ओं विष्णवे स्वाहा ।।3।।

आरती - 11

ओम जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे । ओम्० ।१।।
जो ध्यावे फल पावे दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे कष्ट मिटे तन का । ओम्० ।।२।।
मात-पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी ।
तुम बिन और न दूजा आस करूँ जिसकी । ओम्० ।।३।।
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी । ओम्० ।।४।।
तुम करुणा के सागर तुम पालनकर्त्ता ।
मैं सेवक तुम स्वामी कृपा करो भर्ता । ओम्० ।।५।।
तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति ।
किस विधि मिलूँ दयामय दो मुझको सुमति । ओम्० ।।६।।
दीनबन्धु दुःखहर्ता तुम रक्षक मेरे ।
करुणा-हस्त बढ़ाओ शरण पड़ा तेरे । ओम्० ।।७।।
विषय-विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा । ओम्० ।।८।।

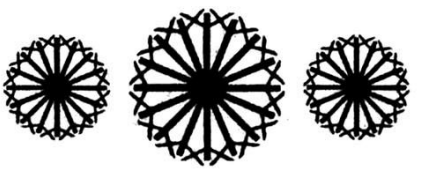

अमावास्या की आहुतियाँ

ओम् अग्नये स्वाहा ।।1।।

ओम् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ।।2।।

ओं विष्णवे स्वाहा ।।3।।

(3) अथ पितृयज्ञः

अग्निहोत्र के पश्चात् पितृयज्ञ है। पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता, पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत् सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है ।

इति पितृयज्ञः

(4) अथ भूतयज्ञः (बलिवैश्वदेव)

निम्नलिखित दस मंत्रों से घृत-मिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़कर पाकशाला में जो कुछ भोजन बना हो, उसी की आहुति करें :-

ओम् अग्नये स्वाहा ।। ओं सोमाय स्वाहा ।। ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ।। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ।। ओं धन्वन्तरये स्वाहा ।। ओं कुह्वै स्वाहा ।। ओमनुमत्यै स्वाहा ।। ओं प्रजापतये स्वाहा ।। ओं सह द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ।। ओं स्विष्टकृते स्वाहा ।।

भोजन का मंत्र

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्र प्र दातारं तारिष ऊर्ज नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।। -यजुः० 11॥ 83

यज्ञोपवीतमन्त्रः

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यभग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।1।। -पार० गृह० 2॥2॥11

ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।।2।। -पार० गृह० 2॥2॥

महामृत्युञ्जयमन्त्र

ओ3म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।60।।

–यजुर्वेद अ0 3

अर्थ – हे प्रभो ! हम शुद्ध गन्धवाले, शरीर, आत्मा और सामाजिक बल को बढ़ाने वाले रुद्ररूप जगदीश्वर की निरन्तर स्तुति करें । आपकी कृपा से लता के बन्धन से छूटकर अमृत तुल्य पके खरबूजे के तुल्य शरीर के बन्धन से छूटें, परन्तु मोक्षरूप सुख से कभी न छूटें ।।60।।

सत्सङ्ग भजन

राष्ट्रीय प्रार्थना (1)

ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राज्ञयः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानडवानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

–यजुः० 22 ॥ 22

भजन – 2

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म-तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल-विनाशकारी ।।
होवें दुधारू गौएँ पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ।।
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान-पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षे पर्जन्य ताप धोवें ।।
फल-फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी ।
हो योगक्षेमकारी स्वाधीनता हमारी ।।

भजन - 3 (यज्ञ प्रार्थना)

पूजनीय प्रभो ! हमारे भाव उज्जवल कीजिए ।
छोड़े देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए ।।
वेद की बोलें ऋचाएँ सत्य को धारण करें ।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक-सागर से तरें ।।
पञ्चयज्ञादिक रचाएँ विश्व के उपकार को ।
धर्म-मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को ।।
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें ।
रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ।।
भावना मिट जाए मन से पाप-अत्याचार की ।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नारि की ।।
लाभकारी हों हवन हर प्राणधारी के लिए ।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये ।।
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा प्रेमपथ विस्तार हो ।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ।।
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे ।
'नाथ' करुणारूप करुणा आपकी सबपर रहे ।।

आर्य समाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएं।

६. संसार का उपकार करना इस संसार का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

ट्रस्ट के उद्देश्य

संसार का उपकार करना, इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

गुरूकुल संचालनः– ऋषि मुनियों के प्राचीन ग्रन्थ, व्याकरण, दर्शन, उपनिषद, आयुर्वेद के ग्रन्थ, चरक, सुश्रुत आदि समस्त विधाओं के मूल स्रोत वेदों के पठन–पाठन के साथ–साथ आधुनिक भाषाओं का भी परिज्ञान हेतु एक गुरूकुल की स्थापना करना।

योग केन्द्रः– एक ऐसे योग केन्द्र का निर्माण करना, जहाँ शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति व भगवत प्राप्ति हेतु (अष्टांग योग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि षड्कर्म) नेति धोति आदि मुद्राओं एवं अन्य यौगिक क्रियाओं के क्रियात्मक प्रशिक्षण व सत्संग आदि के नियमित कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा अनुसंधान करना।

चिकित्सालयः– एक भव्य चिकित्सालय का निर्माण करना जिससे आस–पास के लोग अत्याधिक लाभान्वित हो सके। पूरे देश भर में योग आयुर्वेद एवं एक्यूप्रेशर के नि:शुल्क शिविरों का आयोजन कर ऋषि मुनियों की परम्परा के अनुरूप योग का क्रियात्मक प्रशिक्षण दिया जा सके जिससे अधिक से अधिक व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकें।

गौशालाः– भारतीय संस्कृति में गौ सेवा को शान्दायक, दु:ख निवारक, आरोग्य एवं ऐश्वर्यदायक कर्म स्वीकार करते हुये 'गाय' को माता जैसे ममता भरे उदात्त शब्दों से सम्बोधित किया गया है। ऐसे गौमाता को संरक्षण एवं संवर्धन किया जा सके, जिससे उत्तम से उत्तम औषधि का निर्माण किया जा सके तथा इस विषय में विभिन्न अन्वेषण किया जा सके, ऐसे गौशाला का निर्माण करना।

शौध अनुसंधानः– असाध्य रोगों पर शोध एवं औषधि निर्माण।

दैनिक यज्ञः– संसार में प्रदूषण की समस्या के निवारणार्थ तथा आध्यात्मिक लाभार्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना।

पुस्तकालयः– भारतीय संस्कृति का मूल वैदिक साहित्यों के प्रचारार्थ एक भव्य पुस्तकालय की स्थापना, पुस्तकों का नवीनीकरण करना तथा करवाना।

छायाकार :– सी0 एस0 ग्वाल